गुरुत्तं

भाग-VI

प्रवचनकार

अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी

आचार्य श्री १०८ वसुनंदी जी मुनिराज

प्रकाशक

गजेन्द्र ग्रन्थमाला

सहयोगी प्रकाशक

निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला

कृति : गुरुत्तं भाग-VI

मंगलाशीष : श्वेतपिच्छाचार्य श्री 108 विद्यानंद जी मुनिराज

प्रवचनकार : आचार्य श्री 108 वसुनंदी जी मुनिराज

संपादन : आर्यिका श्री वर्धस्वनंदनी

प्राप्ति स्थान: निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला, बौलखेड़ा
गजेन्द्र ग्रन्थमाला, 47, I फ्लोर, विजय व्लाक,
लक्ष्मी नगर, दिल्ली-110092 दू. 40395480

संस्करण : प्रथम सन् 2017

प्रतियाँ : 1000

मूल्य : 100.00 रुपये

मुद्रक : एन.एस. एन्टरप्राईजिज
2578, गली पीपल वाली,
धर्मपुरा, दिल्ली-110006
दूरभाष : मोबाईल : 9811725356, 9810035356
e-mail : swaneeraj@rediffmail.com

पुरोवाक्

जिनशासन में निमित्त और उपादान का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। उपादान में कार्य होता है किन्तु निमित्त के माध्यम से। निमित्त मिल जाए तो कार्य सिद्धि नियामक है। अंधे के कंधे पर बैठा पंगु व्यक्ति अंधे के साथ मंजिल को प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है। नारी विहीन मात्र पुरुष से संसार की वृद्धि नहीं तो पुरुष विहीन नारी भी कुल की वृद्धि करने में असमर्थ होती है। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। बिना उभय तट के सरिता की गति नहीं होती, बिना वृक्ष के अमर बेल अपनी वृद्धि करने में असमर्थ होती है। यदि लता को अशोक, आम्र आदि सुदृढ़ तरुओं का सहारा मिल जाए तो वे लताएँ तरु के शिखर तक पहुँच जाती हैं। इसी प्रकार आत्म कल्याण के लिए सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र आवश्यक है और सम्यक्त्वादि की सम्प्राप्ति हेतु आप्त, आगम व निर्ग्रन्थ गुरुओं का सान्निध्य अनिवार्य है। बिना देशना लब्धि के सम्यक्त्व की प्राप्ति भी असंभव है। अरिहंतादि परमेष्ठी की देशना ही वैराग्य, संयम, ज्ञान, ध्यान में निमित्त बनती है। जिस प्रकार बिना तार के विद्युत् प्रवाह संभव नहीं है उसी प्रकार गुरु वचन के बिना भव्यों का आत्म हित असंभव मानना चाहिए। गुरु वचन प्राणियों के लिए अति दुर्लभ हैं। कहा भी है-

दुर्लभो विषयात्यागः, दुर्लभो तत्त्वदर्शनः।
दुर्लभो सहजावस्था, दुर्लभो सद्गुरुवचः॥

प्रस्तुत कृति ''गुरुत्तं भाग-6 '' परम पूज्य आचार्य गुरुवर श्री वसुनंदी जी मुनिराज के ग्रीन पार्क दिल्ली चातुर्मास में मीठे प्रवचन श्रृंखला का संकलन है। यह श्रावकोपयोगी विषयों का मनमोहक सौंदर्य व पराग से परिपूर्ण गुलदस्ता है अथवा अनादिकाल से रुगण

भव्य जीवों के मिथ्यात्वादि रोग का शमन करने के लिए पीयूष सम दिव्य औषधि है एवं पौष्टिक आहार है। ये प्रवचन अमावस के घोर तम में दुर्गम कानन में भटकते हुए राही के लिए अतिशय प्रकाश युक्त नंदा दीप की तरह से है या किसी जलाशय में पतित (जिस व्यक्ति का जहाज टूट गया है और समुद्र में डूबने की कगार पर हो) के लिए लकड़ी के तख्त की तरह तिरने को आलंबन स्वरूप है। कुछ लोग इन्हें पंगु की वैसाखी या माता-पिता की अंगुलि के आलंबन के समान स्वात्म कल्याण में अनिवार्य रूप मानते हैं।

खैर कुछ भी हो किन्तु हमें तो पूज्य गुरुवर श्री के प्रवचन तीर्थंकर की वाणी के समान आनंददायी प्रतीत होते हैं और वही हमारे चित्त की विशुद्धि व मोक्ष मार्ग की स्थिरता में निमित्त भी हैं। यदि पाठकगण पक्षपात के सर्वबंधनों से मुक्त होकर, निराकुल चित्त होकर के इनका मुहुर्मुहु पठन-पाठन, अध्ययन, श्रवण आदि करेंगे तब उन्हें ये प्रवचन प्यासे चातक को स्वाति की बूंद की तरह लगेंगे और संभव है ये प्रवचन की बूंदें उनकी निश्छिद्र चित्त की सीप में मोती सम प्रतिभासित हों और उनकी आत्मा भी द्रव्य, भाव, नोकर्म के सीप रूपी बाह्यावरण को तोड़कर मुक्ता का रूप ले सके।

हमारे द्वारा प्रमादवश, अल्पज्ञता वश इस संपादन के कार्य में यत्किंचित् भी त्रुटि रह गई हो तो सुधी पाठक नीर-क्षीर विवेकी हंसवत् गुण ग्राहक दृष्टि बनाकर क्षीर रूपी गुणों का अवग्रहण करें और सारहीन नीर का परित्याग। संभव है आपका आनंद, संतोष, हितमार्ग, संप्राप्ति एवं कल्याण हमारे परिणामों में विशुद्धि एवं आनंद का निमित्त बन सके।

गुरुदेव का चिंतन जो शब्दों की पोषाक पहन भव्यों के कर्णगोचर हुआ उसी को यहाँ सभी के कल्याणार्थ लिपिबद्ध किया गया है।

इनसे वंचित रहने वाले भव्य जनों तक गुरु की यह कल्याणकारी वाणी पहुँच सके, इस हेतु इन प्रवचनों का संकलन ''गुरुत्तं-VI'' के रूप में किया गया है।

इस पुस्तक की पांडुलिपि तैयार करने में संघस्थ त्यागीव्रती, मुद्रण-प्रकाशन में सहयोगी सभी धर्मस्नेही बंधुजनों को पूज्य गुरुवर श्री का मंगलमय शुभाशीष।

गुरुवर श्री का संयम पथ सदैव आलोकित रहे। शताधिक वर्षों तक यह वसुधा गुरुवर श्री के तप, ज्ञान, साधना से सुरभित रहे। परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, अक्षर शिल्पी आचार्य गुरुवर श्री वसुनंदी जी मुनिराज के चरणों में सिद्ध, श्रुत, आचार्य भक्ति सहित कोटिश: नमोस्तु, नमोस्तु, नमोस्तु.....

-आर्यिका वर्धस्व नंदनी

अनुक्रमणिका

1.	टकराव नहीं समझौता	1
2.	मैं ही क्यों	20
3.	आइ वॉन्ट पीस	37
4.	हारिये मत हिम्मत	56
5.	मानवता के मायने	73
6.	आई. पी. एस.	98
7.	महत्त्वपूर्ण है 'ठहराव'	116
8.	राजी खुशी	130
9.	भोजन से भजन	139
10.	आत्मा का संगीत	159

१. ''टकराव नहीं समझौता''

महानुभाव ! हमारा जीवन जन्म और मृत्यु के बीच का पड़ाव है, इस पड़ाव को सभी व्यक्ति अपने-अपने तरीके से पूरा करते हैं। जन्म और मृत्यु की दूरी को पूरे करने के तरीके सबके अलग-अलग हैं। चाहे कोई गरीब है या अमीर, चाहे कोई विद्वान है या मूर्ख, चाहे कोई सुन्दर है या असुन्दर, चाहे कोई व्यक्ति अकेला है या समूह के मध्य में है, चाहे कोई व्यक्ति प्रतिष्ठित है या प्रतिष्ठा विहीन, चाहे कोई शासक है या शासित, सभी का जीवन जीवंत की अपेक्षा से अथवा पड़ाव की अपेक्षा से एक जैसा है, उस जीवन में कहीं कोई अंतर नहीं। वह जीवन जन्म से ही प्रारंभ होता है और मृत्यु पर पूर्ण हो जाता है। जीवन रूपी (पुस्तक) डायरी में जन्म उसका प्रथम अक्षर है और मृत्यु उस जीवन के अंत का पूर्ण विराम है।

महानुभाव ! बात ये है कि उस जीवन की पुस्तक में लिखना क्या है ? जीवन की पुस्तक तो प्रत्येक व्यक्ति के पास है, ऐसा संसार का कोई प्राणी नहीं जिसके पास जीवन की पुस्तक न हो। हम अपने जीवन की पुस्तक में गालियाँ भी लिख सकते हैं और गीत भी लिख सकते हैं। हम जीवन की पुस्तक को कठोर भी बना सकते हैं, व ऋजु भी बना सकते हैं। हमारा जीवन सरल, सहज, सुबोध भी हो सकता है तथा इसके विपरीत परशु, कठोर, निंद्य भी हो सकता है। जीवन हमारा है, हमारे जीवन पर हमारा पूर्ण अधिकार है किंतु सामने वाले जीव को भी अपने जीवन का पूर्ण अधिकार है।

हम चाहते हैं हमारे जीवन में कोई हस्तक्षेप करने वाला न हो, हम चाहते हैं हम अपना जीवन अपने तरीके से जीयें, अपने नियम, अपने कायदे-कानून से जीयें, हमारी शांति को कोई भंग न करे, तो सामने वाला भी यही चाहता है कि उसके जीवन की शांति को भी

कोई भंग करने वाला न हो। यदि हम अपने जीवन में शांति चाहते हैं तो उसका केवल और केवल एक ही उपाय है वह है हम दूसरे को (सामने वाले को) शांति देने का प्रयास करें। जिस दिन हमारे जीवन में ये धारणा बन जायेगी कि सामने वाले को शांति देने से हमें शांति मिलेगी, उस दिन से आपको शांति मिलना प्रारंभ हो जायेगी।

जब तक हम सामने वाले की चिता जलाने की कोशिश करेंगे, सामने वाले को छलने की कोशिश करेंगे, सामने वाले का दुरुपयोग करके अपने स्वार्थ को सिद्ध करने की कोशिश करेंगे तब समझ लेना सामने वाले की भी तुम्हारे प्रति यही भावना होगी। हमारा व्यवहार ही हमारा जीवन है, इसके आगे हम कुछ भी नहीं। हम जो हैं वो ही हैं, सामने हमें जो मिलता है वह हमारी ही परछाई होती है। हमारा जीवन दर्पण के सामने नृत्य करने वाली नर्तकी के समान है। वह जैसा नृत्य करती है दर्पण में वैसा ही झलकता है, इसमें दर्पण का कोई दोष नहीं, हम दर्पण को बदलते जायें तो दर्पण के बदलने से नर्तकी का नृत्य अच्छा या बुरा नहीं हो जायेगा।

जेल को बदलने से मुक्ति नहीं मिलती, मुक्ति तो तब मिलती है जब हम खेल को बदल देते हैं। जिस खेल को हम खेलते चले आ रहे हैं वह तो जेल ही जेल है और यदि हमने अपनी आत्मा से मेल करके इस संसारी खेल को थोड़ा सा विराम दे दिया तो अनंतकाल के लिये हम इस जेल से मुक्त हो जायेंगे। किन्तु हमारी प्रवृत्ति है हम इस खेल को नहीं छोड़ते, बस इतना करते हैं एक जेल में परेशानी हुयी तो दूसरी जेल में चले गये, तीसरी चौथी में चले गये अर्थात् शरीर बदलते रहेंगे नये-नये शरीर प्राप्त करते रहेंगे, हम वह भावना नहीं भाते कि इस शरीर से ही मुक्ति मिल जाये।

महानुभाव ! हम दर्पणों को बदलने में लगे हैं उसी में कमी निकालते रहते हैं। जब से जागते हैं और जब तक सोते हैं तब तक

यही सोच-विचार करते रहते हैं यह व्यक्ति अच्छा नहीं, ये वस्तु अच्छी नहीं है, ये कार्य अच्छा नहीं। हमारी आँखें सदैव सामने वाले को देखती हैं, पर के व्यवहार को देखती हैं उसे कभी सामने वाले की अच्छाई नहीं दिखाई देती। आश्चर्य की बात तो ये है कि हमें हमारी बुराई तो दिखती ही नहीं क्योंकि एक किवदंती है-प्रभु परमात्मा ने इस इंसान को दो बैग दिये और कहा-एक बैग आगे लटका लेना और एक बैग पीछे लटका लेना, आगे लटकाने वाले बैग पर लिखा था स्वयं की बुराई और पीछे वाले पर लिखा था दूसरे की बुराई। किन्तु इस इंसान ने जल्दी-जल्दी में बैग तो लटकाया किन्तु आगे का पीछे हो गया, पीछे का आगे हो गया, खुद की बुराई वाला बैग तो पीछे चला गया, दूसरे की बुराई वाला बैग आगे आ गया वह जब भी आँख खोलता है उसे सबसे पहले सामने वाले की बुराई दिखाई देती है, अपनी बुराई तो उसे कभी दिखाई देती ही नहीं।

क्योंकि जीवन में जन्म से मृत्यु पर्यंत प्रायःकर इंसान के साथ ऐसा होता आया है कि उसे कभी बैग बदलने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी, उन्हीं उल्टे बैगों से काम चल रहा है। कभी कोई सद्गुरु झकझोर दें कि परमात्मा ने जो बैग दिया था, उसे तूने उल्टा कर दिया है गुरु की बात मान ले, पीछे वाले बैग को आगे कर दे, आगे वाले बैग को पीछे कर दे तो संभव है उसका जीवन सुधर जाये, जीवन बदल जाये, उसकी दृष्टि बदल जाये, उसकी सृष्टि बदल जाये। वह अपनी आँखों को निकालकर तो पीछे लगा नहीं सकता पीछे वाले बैग को आगे और आगे वाले बैग को तो पीछे कर ही सकता है किन्तु वह कहता है मैं क्या करूँ मुझे सामने वाले की गलती दिखाई देती ही है, आँखे यहीं पर हैं।

महानुभाव ! अब हमें बदलना है किन्तु आँखों को नहीं बैगों को बदलना है। जब हमारी दृष्टि दूसरे की गलती पर रहती है, तब हमारे

जीवन में टकराव ही टकराव रहता है। हमारा जीवन दुर्घटना का शिकार बन जाता है। आज तक किसी ने किसी को टक्कर मारी हो और टक्कर मारने से किसी का भला हुआ हो तो बताओ ? कहीं टकराने का परिणाम अच्छा निकलकर आया हो तो बताओ ? क्योंकि टकराने का परिणाम कभी अच्छा होता ही नहीं। आप कहें कि टकराव से हानि ही क्या है ? तो हानि ही हानि है। जंगल में खड़े दो सूखे बाँस जब आपस में टकराते हैं तो चिंगारी पैदा करते हैं, वे चिंगारी पैदा कर मात्र पूरे जंगल को ही नहीं जलाते वरन् स्वयं भी जलकर राख हो जाते हैं। टकराव का परिणाम ये होता है।

जो टकराव पैदा करने वाले हैं, जो कारण हैं वे भी सुरक्षित नहीं रहते। बाँसों ने अग्नि पैदा की किन्तु वे सुरक्षित नहीं रह पाये। जहाँ कहीं भी दो सेनाओं में, दो राजाओं में टकराव हुआ उनमें से किसी ने भी सुखशांति प्राप्त नहीं की। एक सेना यदि समूल नष्ट हुयी तो सामने वाली सेना भी तो नष्ट हुयी ऐसा नहीं कि उसकी उन्नति हुयी। यदि एक देश का धन 50 लाख करोड़ व्यय हुआ तो सामने वाले का भी 60 लाख करोड़ रु. का व्यय हुआ होगा। रक्तपात करने से कोई लाभ नहीं, वचन विसंवाद करने से कोई लाभ नहीं, मन में विकार पैदा करने से कोई लाभ नहीं क्योंकि टकराव कभी लाभ का सौदा है ही नहीं।

जितनी अदालतें होती हैं, वे टकराव को सुलझाने के लिये होती हैं। जीवन में जब-जब भी टकराव होता है तो गर्मी पैदा होती है। अग्नि व ऊष्णता पैदा होती है और अग्नि कभी शीतलता नहीं देती, जलाती है। वह सदैव दहन करने वाली होती है। आकाश में ग्रह जब तक एक निश्चित दूरी बनाये चल रहे हैं तब तो ठीक है जब दो ग्रह आपस में टकराते हैं तो अग्नि का पिण्ड जलता हुआ दिखाई देता है वे उल्कायें गिरती हुयी दिखायी देती हैं जो जमीन पर आकर ध्वस्त

हो जाती हैं। चाहे टकराने वाले रत्नों के विमान ही क्यों न हों किसी विमान के टकराव से अमृत की वर्षा हुयी हो तो बताओ ?

टकराव से कभी अमृत नि:सृत नहीं होता जब भी निकलेगा जहर ही निकलेगा, जब भी निकलेगी तो वैमनस्यता, विद्वेष ही निकलेगा, संक्लेशता बनेगी, आर्त्त-रौद्र ध्यान बनेगा। टकराव से कभी सम्मति नहीं होती, कभी शांति नहीं होती टकराव में तो मृत्यु या दु:ख ही होता है। तत्काल में मृत्यु नहीं भी हुयी किन्तु मृत्यु तुल्य पीड़ा का अनुभव होता है।

महानुभाव ! महाभारत का युद्ध हुआ कहा जाता हैं अठारह दिन में अठारह हजार अक्षौहिणी सेना नाश को प्राप्त हो गयी। कुरुवंश नष्ट हो गया, तो क्या पाण्डव वंशों ने राज्य किया ? पाण्डवों की सेना भी नष्ट हो गयी वे भी कुरुजांगल देश को छोड़कर उत्तर मथुरा की ओर चले गये। यदि महापुरुषों में भी टकराव हुआ तो उन्हें भी कलंक का टीका लग गया। जिस कुल को राजकुल माना जाता है वह इक्ष्वाकुवंश जिनमें कुलकरों की उत्पत्ति का क्रम चला, जिसमें प्रथम तीर्थेश श्री वृषभदेव स्वामी हुये, जिस कुल में प्रथम पुत्र भरतचक्रवर्ती हुये, द्वितीय पुत्र कामदेव बाहुबली हुये, अनंतवीर्य जैसे प्रथम मोक्षगामी पुत्र हुये, विश्वकर्मा जैसे वास्तुशास्त्री हुये, ब्राह्मी, सुन्दरी जैसी पुत्रियाँ जो ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाली नारी धर्म की प्रवर्तिका हुयीं ऐसे पुनीत कुल में भी भरत बाहुबली का टकराव आज तक आगम में निहित है।

पूरा चौथा काल निकल गया, तृतीय काल का भी एक भाग निकल गया, इतना पंचम काल निकल गया किन्तु वह टकराव आज भी शास्त्रों में गर्भित है। उस टकराव से आज तक कोई अच्छाई निकलकर नहीं आयी, उस टकराव का परिणाम ये हुआ बाहुबली दीक्षित भी हो गये तो क्या हुआ उनका मन विशुद्ध नहीं हुआ, एक

वर्ष तक मन में विकल्प चलता रहा। हो सकता है वे एक मुहूर्त में केवलज्ञानी बन जाते किन्तु एक मुहूर्त में केवलज्ञानी नहीं बने, एक वर्ष तक तपस्या करते रहे। भरत चक्रवर्ती यावज्जीवन राज्य अवस्था में रहे किन्तु राज्य का सुख उन्होंने नहीं भोगा, जीवनभर ये ही विकल्प चलता रहा कि ये सम्पत्ति मेरी नहीं है, तीन युद्ध में बाहुबली जीत गया ये राज्य सम्पत्ति तो उसकी उच्छिष्ट है जिस पर मैं अपना राज्य करके बैठा हूँ, अपने भाईयों के बिना कैसा राज्य ? मेरे 100 भाई दीक्षा ले चुके मैं यहाँ अकेला बैठा हूँ। जब कोई उपलब्धि होती है तो व्यक्ति अपनी उपलब्धि को, अपनों को दिखाता है, मेरे भाई-बन्धु तो कोई है नहीं, पिता भी नहीं दीक्षा ले ली, किसको बताऊँ कि मैं चक्रवर्ती बन गया, वे यावज्जीवन विकल्प में रहे, उस विकल्प से आध्यात्मिक बन गये, संसार से उदासीनता हो गयी। किन्तु टकराव कभी सुख का कारण नहीं बना।

महानुभाव ! दो बैलों में युद्ध हुआ दोनों बैलों ने एक दूसरे को सींग मारा एक बैल तो तत्काल ही मृत्यु को प्राप्त हो गया और दूसरा बैल भी मरने वाला था तभी पद्मरुचि रथ में बैठकर वहाँ से आ रहे थे उन्होंने देखा कि एक बैल मरणासन्न है उसको णमोकार मंत्र सुनाया, वह बैल बाद में सुग्रीव बना। जिस समय दोनों बैल आपस में लड़े तो उस टकराव से क्या मिला? दोनों को मृत्यु, यदि नहीं टकराते तो हो सकता है चिरकाल तक दोनों शांति से जीते, शांति से नहीं जी पाये इसका एक ही कारण रहा-टकराव।

टकराव होने पर घर्षण होता है, घर्षण में शक्ति व्यय होती है शक्ति का अपव्यय होता है। जब-जब भी आप टेंशन में होते हैं तो वह टेंशन क्या चीज है, टेंशन खुद से खुद का टकराव है। जो आप चाहते थे वह आपको नहीं मिला, और जो नहीं चाहते थे वह आपको मिला। इष्ट का वियोग-अनिष्ट का संयोग हो गया मन ही मन आप

जल रहे हैं। क्रोध क्या है ? टकराव है। जो काम आपके अनुकूल नहीं हुआ, क्रोध आ गया, अपनी ही अग्नि में अपने को स्वाहा कर रहे हैं। सामने वाले को जलाने के लिये अग्नि पैदा की किन्तु आप स्वयं ही जल गये, सामने वाला जले या न जले। टकराव उस शक्ति का निर्माण है जो शक्ति हमें ही नष्ट कर दे। दो भाई-भाई में टकराव हुआ परिणाम ये हुआ कि वे आपस में लड़े, दोनों की पत्नियाँ विधवा हो गयीं, दोनों का वंश नष्ट हो गया, क्या मिला टकराव में।

एक शब्द में टकराव हो जाता है और टकराव होना मूर्खता की पहचान है। टकराव वहीं होता है जहाँ पर मूर्खता होती है। जितनी चरम सीमा पर मूर्खता पहुँच जायेगी उतना बड़ा टकराव होता चला जायेगा, और मूर्खता जितनी कम होगी उतना टकराव कम होगा। अपनी-अपनी जीवन की पुस्तक को खोलकर देख लो तुम्हारी पुस्तकों में कितने-कितने टकराव हैं। जितना टकराव उतना संघर्ष, उतना दु:ख, जितना टकराव उतनी संक्लेशता, उतनी अशांति और विनाश। टकराव के मायने ये ही हैं। जब दो वाहन आपस में टकराते हैं तो दोनों चूर-चूर हो जाते हैं यदि दोनों वाहन समझौता करके चलें तो आसानी से निकल सकते हैं।

चाहे कोई भी शासक रहा हो चाहे जब इस देश में मोनार्की थी तब, चाहे आज डैमोक्रेसी (प्रजातंत्र) है तब, जहाँ भी टकराव है चाहे राजनीति में टकराव है तो विघटन हो गये, अच्छी-अच्छी पार्टियों का नाम-निशान नहीं रहा। बड़े-बड़े राजा आपस में टकराये उनका भी नाम निशान नहीं रहा, उनकी स्वतंत्रता छिन गयी, राज्य छिन गया भीख माँगने की नौबत आ गयी। यदि घर में टकराव हो गया तो स्वर्ग जैसा घर नरक से ज्यादा बदतर बन गया, सास-बहू से नहीं बोल रही, बाप-बेटे से नहीं बोल रहा, भाई-भाई आपस में नहीं बोल रहे, सभी में विद्वेष है, मन में बड़े फासले हैं। अंदर का द्वंद बाहर के युद्ध से

बड़ा कठिन होता है यदि अंदर के द्वंद को शांत नहीं किया तो बाहर के युद्ध उसके सामने बौने पड़ जाते हैं।

महानुभाव ! टकराव के मुख्य कारण दो हैं। अहम् और वहम्। अहंकार के जाग्रत होते ही टकराव होता है। मैं ऐसा हूँ, मेरे साथ ऐसा व्यवहार किया 'मैं-मैं-मैं'। जब अहंकार का नाग फुंकारता है तो कई बार जब जहर ज्यादा निकल जाता है तो फिर वह सर्प अपने ही जहर से मर जाता है। अहंकार का विष अपने पालने वाले सपेरे को भी डस देता है। अहंकार टकराव का मुख्य कारण है जीवन में जितना अहंकार बढ़ता चला जायेगा जीवन उतना ही खराब होता चला जायेगा। बस ऐसे ही समझो जैसे हाथी ने कैथे को निगल लिया और जब कैथा मल में बाहर आया तो मात्र कैथे का आकार दिखाई दे रहा है उसके अंदर सत्व कुछ भी नहीं, अहंकारयुक्त जीवन भी ऐसा ही है जीवन तो है किन्तु उसमें जीवंतता कुछ भी नहीं है।

इस अहंकार के भूत को तो उतार देना चाहिये, यह भूत सब भूतों से ज्यादा खतरनाक है। अन्य भूत तो जब आते हैं तो कोई रोता है, कोई कहता है सिर भारी हो गया, चार लोग पकड़ते हैं फिर भी पकड़ में नहीं आता किन्तु उसे फिर भी मांत्रिक-तांत्रिक कैसे भी ठीक कर देता है वह भूत तो उतर जाता है किन्तु अहंकार का भूत जब सवार होता है तब ये भूत न जाने कितनों को भूत (काल) बनाकर ही उतर पाता है। ये अपने वर्तमान को भूत बना देता है लोग कहते हैं यह व्यक्ति कभी था अर्थात् जो है वह था में बदल जाता है।

तो टकराव का पहला कारण है अहं। अपने जीवन में झाँक कर देखो तुम्हारे जीवन में जब-जब भी प्रतिकूलता आयी होगी, जब-जब भी तुमने जीवन में संघर्ष किया होगा, जब-जब आप संक्लेशित हुये होंगे तब-तब आपके जीवन में अहंकार ने कहीं न कहीं घर बनाया होगा। अहंकार का अंकुर जब अंकुरित होता है वह तो बेशर्म के पेड़

की तरह होता है उसे कितना भी काटते जाओ वह बढ़ता ही चला जाता है घटता ही नहीं।

टकराव का दूसरा कारण है वहम्। यदि मन में वहम् सवार हो गया तो दूरियाँ बढ़ती चली जायेंगी उन्हें कौन पाटेगा ? मन में भ्रांति पैदा हो गयी तो उस शक की कोई औषधि नहीं। औषधि रोग की हुआ करती हैं। भ्रम के रोगी मैं समझता हूँ संसार में 99% व्यक्ति मिल जायेंगे। वहम् की दवाई किसी भी अस्पताल में नहीं और यह ध्यान रखना कि किसी व्यक्ति को यह वहम् हो जाये कि मुझे रोग हो गया है तो उस वहम् के रोग को डॉक्टर भी ठीक नहीं कर सकता, डॉक्टर तो असली रोग को ठीक करता है।

एक व्यक्ति कहता है-डॉक्टर साहब सपने में मुझे कुत्ते ने काट लिया, डॉ. कहते हैं-भाई ! दुबारा सोओ, बोला कब तक ? बोले जब तक सपने में कोई डॉ. आकर चौदह इंजेक्शन न लगा दे तब तक सोते रहो। यदि मन में रोग पैदा हो जाये तो उसको दूर करने का उपचार क्या है ? भ्रम दूर कर लेना, भ्रम के दूर होते ही आप एक निर्णय पर पहुँच जायेंगे जो कुछ मन में है वह कह दो, अच्छा बुरा जो मन में आये वह कहते जाओ, कहने से फैसला हो जाता है चाहे वह फैसला तुम्हारे पक्ष में हो या विपक्ष में ये बात अलग है। किन्तु मन की बात कह देने से फैसला हो जाता है और मन में गाँठ बांध कर रखे रहने से फाँसला हो जाता है।

यदि सास-बहू एक दूसरे को अपनी मन की बात नहीं बता रहीं तो फाँसले बढ़ जायेंगे। सास ने बहू से कहा कि बहू मुझे तेरी ये गलती पसंद नहीं, तो हो सकता है बहू सास की उपेक्षा कर दे किन्तु ये कहेगी मेरी सासू माँ छली-कपटी नहीं है, जो मन में आया सो कह दिया। बहू ने अपने मन की बात कह दी तो हो सकता है सास भी उसे क्षमा कर दे। कभी-कभी ऐसा होता है कि मन में कुछ भी नहीं

होता है बस धजी का सांप बन जाता है वहम् इसी का नाम है। रात्रि में हवा चली, कोई पेड़ हवा से झूल रहा है, उसे लगता है कि भूत आ रहा है, इसी का नाम है वहम्। यह वहम् टकराव का कारण है। महानुभाव ! अहं और वहं दोनों चीजों से जीवन में बचना है। यदि हम दोनों से बच गये तो हम जीवन में नया प्रारंभ कर सकते हैं।

जीवन में नया करने के लिये बहुत कुछ है, हमारा जीवन इतना ही नहीं है जितना हमने समझ लिया इसके आगे बहुत है, ध्यान रखना असंभव के आगे सिर्फ संभव ही संभव होता है। असंभव के पहले संभव दिखाई नहीं देता। तुमने अपने जीवन में जिस चीज को असंभव बनाकर के रखा है, प्रारंभ में लगता है ये असंभव है किन्तु जो असंभव को पार करके आ गया वह कहता है मेरे जीवन में कभी असंभव आ ही नहीं सकता, जो असंभव था उसे तो मैं छोड़कर आ गया। जैसे कर्म सिद्धान्त में जिस कर्म प्रकृति की बंध व्युच्छित्ति हो जाती है, उदय व्युच्छत्ति या सत्व व्युच्छि हो जाती है वे प्रकृतियाँ उस गुणस्थान तक रहती हैं आगे अब वे नहीं मिलेंगी, लौट के वहीं आओगे तो मिलेगी। जिस पेड़ को जहाँ छोड़कर गये वह पेड़ कहीं नहीं मिलेगा यहाँ आओगे तो यहीं मिलेगा। जिस गाँव, नदी, तालाब, पहाड़ को जहाँ छोड़ा है वह वहीं मिलेगा, दूसरी जगह मिलेगा ही नहीं, व्युच्छुत्ति हो गयी।

महानुभाव ! इस टकराव के आगे भी कुछ और है, वह क्या है? उस टकराव के आगे है समझौता। जिसके जीवन में समझौता करने की प्रवृत्ति आ गयी वहाँ टकराव स्थान नहीं पा सकेगा। हिमगिरी के ऊपर अग्नि जलाना बड़ा कठिन है, बर्फ में आग कैसे लगेगी? समझौता के मायने भी हम समझें। टकराव के मायने हमने देखा-आक्रमण, आक्रमक प्रवृत्ति, विध्वंस, हिंसा, विद्वेष, क्रूरता, मूर्खता, बेहोशी किन्तु समझौता के मायने होता है अहिंसा, जीओ और

जीने दो। समझौता के मायने होता है समझ–न्यौता अर्थात् अब समझ ने तुमको न्यौता दिया है। अभी तक तो तुम नासमझी में टक्कर मार रहे थे, किन्तु समझौता वह है जहाँ पर हमारी समझ हमें न्यौता देती है।

आज तुम अपने जीवन में स्वर्ग को स्थापित करना चाहते हो क्योंकि आपने समझ लिया कि टकराव के मायने है नरक, वहाँ पर टकराव ही टकराव है समझौता नहीं। टकराव तो है मूर्ख अज्ञानी व अशुभ लेश्या वाले व्यक्तियों का संक्लेश भाव, व्यंतरादि क्रूर देवों की प्रवृत्ति किन्तु समझौता के मायने है देवों की अवस्था, भोग भूमि की अवस्था, नियम से चलने वाले ज्योतिष देवों का क्रम, किसी साधक की साधना, किसी शिष्ट–सभ्य–सदाचारी घर में रहने वाले पुरुषों का सम्मेलन, विद्वानों की गोष्ठी, जीवन में सुसंस्कारों का आ जाना और मोक्षमार्गी बन जाना।

जीवन में जब समझौता की समझ प्राप्त होती है तब हमें समझ लेना चाहिये कि अब हममें गुण आ गये, अब हम सोते से जाग गये। समझौता करने के लिये थोड़ा झुकना पड़ता है, समझौते के लिये थोड़ी शर्तें हैं। झुकेगा वही जिसमें कुछ गुणाधिक्य है, जिसमें नम्रता है अन्यथा टकराने के लिये सभी तैयार हो जायेंगे। लोग कहते हैं मैं मर जाऊँगा पर झुकूँगा नहीं। जो दीपक की लौ हवा को देखकर झुकना जानती है वह दीपक की लौ बुझती नहीं किन्तु जो दीपक की लौ झुक नहीं पाती स्थिर अड़ी रहे वह एक ही झोंके में बुझ जाती है।

जो पेड़ झुकना जानता है उसे कैसा भी तूफान उखाड़ नहीं सकता, जो पेड़ ज्यादा झुकना नहीं जानता वह ज्यादा टिक नहीं पाता। घास को उखाड़ने वाला कोई तूफान नहीं देखा और लंबे–लंबे वृक्षों को टिकाने वाली जड़ें नहीं देखीं। जब वृक्ष लम्बा हो जाता है जड़ें ज्यादा गहरी नहीं हो पातीं तो वह शीघ्र धराशाही हो जाता है। अपनी

जड़े (संस्कार) जितनी गहरी होती हैं, जितनी फैली हुयी होती हैं उतना हमारा जीवन ज्यादा सुरक्षित होता है। जड़ें कम हों लम्बाई ज्यादा बढ़ जाये तो समझ लेना हमारे उलटने के दिन आ गये, अब हम धराशाही होने वाले हैं। जो पेड़ नीचे गति कम करे, ऊपर दिखावटी उन्नति ज्यादा करता चला जाये समझ लेना चाहिये अब मिटने के दिन समीप हैं। जो मकान ऊपर ही ऊपर बनता चला जाता है नींव नीचे गहरी नहीं होती वह मकान धराशाही हो जाता है।

महानुभाव ! समझौता के मायने को समझना जरूरी है। यह जीवन नदी की बहती धारा के समान है, वह धारा दोनों तटों के साथ समझौता करती है तभी वह नदी की धारा पारावार तक पहुँच जाती है, समुद्र में जाकर समुद्र बन जाती है। यदि वह नदी की धारा तटों से जूझती रहे, तट को तोड़ भी दे तो बिखर जायेगी, तट तो टूटेगा सो टूटेगा वह भी मरुथल में बिखर करके अपनी जीवन लीला समाप्त कर देगी। दोनों तट धारा के लिये तटस्थ हैं, नदी में फूल बहें चाहे शूल, मुर्दा बहे या जीवंत व्यक्ति तैरे, चाहे कोई साधक आये या भोगी-विलासी, नदी का तट उस धारा को उठकर अपने गले नहीं लगाता और दूसरा तट उसे दुतकार कर लात नहीं मारता दोनों तटस्थ हैं।

यदि हम भी तटस्थ जीना सीख जायें तो हमारे जीवन में समझौते की प्रवृत्ति आ जाये। उस समझौता के मायने हैं अहिंसा धर्म। समझौतापन यदि हमारे जीवन में आ जाता है तब नि:संदेह मानिये कि हमारी उन्नति प्रारंभ हो गयी। एक परिवार में नयी बहू आयी, उस परिवार का माहौल बड़ा खराब था, क्योंकि उससे पहले उस परिवार में सात बहुयें और आ चुकीं थीं, आठवीं सास थी, ये नौवें नंबर की बहु आयी। उस परिवार में सुबह से ही छोटी-छोटी बातों पर टकराव होता कि झाड़ू तू लगा, पानी वो भरे, कपड़े मैं नहीं धोऊँगी। एक

दूसरे पर काम टालना व उन कामों में कमी निकालना उनकी आदत थी। जब तक एक दूसरे को खरी खोटी नहीं सुना लेती थीं तब तक चैन नहीं पड़ता था। सासू माँ भी उनके रोज-रोज के झगड़ों से तंग आ गयी। ससुर साहब सज्जन थे, उन्होंने कह रखा था चाहे तुम लड़ो या भिड़ो मैं तुम सब में से किसी को अलग नहीं करूँगा, मकान यही रहेगा, इसी एक चूल्हे पर रोटी बनेगी चाहे कुछ भी करो। ससुर भी समझाते-समझाते थक गये पर किसी की समझ में नहीं आया। नयी बहू ने देखा कि यहाँ तो नरक जैसा माहौल है-क्या करना चाहिये, किन्तु मुझे इस नरक जैसे माहौल को नरक नहीं कहना है, ये कहना है कि मैं तो स्वर्ग में आ गयी।

प्रथम दिन बीता उसने अपनी सासू माँ के चरण स्पर्श किये, सातों बहिन समान जेठानियों के चरण छूये, जेठों को प्रणाम किया सबका आशीर्वाद प्राप्त किया सबने खूब आशीष दिया। उसने पूरे दिन की चर्या देखी और शांत रही, काम करने के लिये उसने हाथ बढ़ाया सास ने रोक दिया, अरे अभी नहीं अभी तो हाथ की मेंहदी भी नहीं छूटी, अभी कोई कार्य तुझसे नहीं करायेंगे। उसका मन नहीं माना एक-दो दिन सास की बात मानी और अगले दिन जिसका नंबर था वो जगी नहीं, उसके जगने के पहले नयी बहू उठी और पूरे घर की सफाई कर दी।

अन्य सब बहुएँ देख रही थीं, उसे रोकने के लिये आयीं तुमने उसका काम क्यों किया ? उसने कहा बहिन क्षमा करना मेरे माता-पिता ने मुझे बताया कि तुम्हारी जो ससुराल है वह ससुराल एक मंदिर है, वे सब एक स्वर में बोली-अरे ! तुम कहाँ फँस गयीं ये मंदिर नहीं नरक है। वह बोली मेरे मम्मी-पापा झूठ नहीं बोलेंगे, इसलिये मैं प्रातःकाल सबसे पहले मंदिर की सफाई कर रही हूँ। मुझे आप ही बताईये मंदिर की सफाई करने में पुण्य लगता है या पाप।

पुनः कपड़े धोना प्रारंभ कर दिया, जिसकी ड्यूटी थी वह उसके हाथ से कपड़े लेती है कहती है नहीं-नहीं मैं धोऊँगी। नयी बहू कहती है मैं भी सहयोग करूँगी। दूसरी जेठानियों ने कहा अरे ये उसी का काम है उसे करने दे। वह बोली मेरे मम्मी-पापा ने बताया था कि ससुराल यदि मंदिर है तो वहाँ रहने वाले सभी जन भगवान जैसे हैं भगवान के अंगोछी/वस्त्र हैं, उन्हें धोने में तो पुण्य लगता है, मैं कैसे छोड़ दूँ। पुनः रसोई में गयी नाश्ता बनाने का नंबर था वह माँ के पहले ही गयी और नाश्ता तैयार कर दिया माँ ने कहा बेटा तूने क्यों बनाया? बोली माँ जी क्षमा करना, भगवान के लिये जो भोग बनता है उसे बनाने में पुण्य लगता है या पाप। माँ ने कहा बेटा पुण्य लगता है। तो बोली माँ वह पुण्य अवसर मुझे दे दो ना। मैं ही कल से पूरे घरवालों के लिये भोग बनाऊँगी, इस गृह के सभी सदस्य मेरे लिये भगवान जैसे हैं। इस तरह दो सप्ताह का समय भी पूर्ण नहीं हुआ कि वे ही घर वाले आपस में प्रेम-वात्सल्य के साथ रहने लगे। ससुर की आँखों में आँसू आ गये कहने लगे-बेटी! वास्तव में तेरे माता-पिता धन्य हैं जिन्होंने तुझे ऐसे संस्कार दिये। ये घर तो वास्तव में नरक जैसा था, तूने आकर इसे वास्तविक मंदिर ही बना दिया।

महानुभाव ! समझौता के मायने यही होता है कि नरक को भी स्वर्ग बनाया जा सकता है। समझ जब न्यौता दे दे तभी समझौता होता है अन्यथा मूर्खता के न्यौते में तो टकराव होते चले जाते हैं।

एक बार दो भाई माता-पिता की मृत्यु होने के उपरांत बेरोजगार रहे। घर में खेती करने के लिये खेत भी नहीं था, दोनों को ही कार्य करना था, इतनी पूंजी नहीं थी कि वे अपनी दुकान बना सकें। उनके पास 200 गज जगह थी। 200 गज जगह में हिस्सा किया तो 100-100 गज हिस्से की जगह आयी, दोनों ने झोंपड़ी जैसा घर बना लिया। उन्होंने एक-एक कमरा एक्सट्रा बनवाया, क्योंकि वे पढ़े लिखे

थे सोचा था कोचिंग सेन्टर चलायेंगे। दोनों में झगड़ा हुआ मैं कोचिंग सेन्टर चलाऊँगा। दोनों के 5-7 विद्यार्थी थे एक कमरे में कितने आ पाते।

तभी सरपंच जी आये, वे बोले-बच्चों ! तुम्हारे पिता मेरे मित्र थे और मेरे मित्र के बेटे आपस में लड़कर जीवन लीला समाप्त करें, ये मैं नहीं देख सकता इसलिये मेरी बात मान लो, एक काम करो-तुम्हारे पास 100-100 गज के दो-प्लॉट हैं, पैसा मैं दे दूँगा इस घर को डिसमेन्टल करके पहले नीचे पूरा एक हॉल बनाओ उसके ऊपर अपने-अपने फ्लैट निकालो। जो 200 गज का नीचे हॉल है वहाँ अपनी कोचिंग क्लास चलाओ। 200 गज के हॉल में 500 बच्चे आराम से पढ़ सकते हैं और जो विद्यार्थी बड़े बेटे से गणित पढ़ने आते हैं उन्हें छोटे के पास अंग्रेजी पढ़ने भेज दो और छोटा भाई अंग्रेजी के विद्यार्थी को गणित पढ़ने बड़े भाई के पास भेज दे। यदि इस तरह दोनों मिलकर काम करेंगे तो तुम्हारे पास किसी चीज की कमी न रहेगी। सरपंच ने अपना पैसा लगाया, और पुन: दोनों भाईयों ने वह पैसा मय ब्याज के चुका दिया।

समझौता के मायने तो यह होता है, यदि दोनों आपस में लड़ते ही रहते तो दोनों परिवार ही टूट जाते शायद निर्मूल ही हो जाते। टकराव में तो दु:ख है ही वहाँ सुख की कल्पना ही नहीं। हम कई बार कहते हैं यदि बिना किसी शर्त के (without condition) दो लोग या दो अंक मिल जायें तो सबसे ज्यादा उन्नति होती है। $2 + 2 = 4$ होते हैं या $2 \times 2 = 4$ होते हैं, या दो का वर्ग $(2)^2$ करो तब भी चार होते हैं $2 - 2 = 0$, किन्तु without condition (+, -, x ÷) 22 एक साथ मिल जायें तो बाईस हो जायेंगे।

दो एक एकादश हुये किसने नहीं देखे सुने।
शून्य के भी योग से, अंक होते दस गुने।।

यदि बिना शर्त के शून्य लग जाता है अर्थात् जहाँ अंक हो वहाँ शून्य लग जाये तो अंक का मूल्य बढ़ जायेगा। समझौता के मायने है यदि आपने शून्य से समझौता भी कर लिया, यदि अपने बराबर वाले के साथ किया 1 और 1, 11 हो गये, 3 है तो 33 हो गये यदि शून्य के साथ समझौता किया तो उन्नति दस गुनी हो गयी दो शून्य से समझौता कर लिया तो 100 गुना, चार शून्य से समझौता किया तो हजार गुना और पाँच से समझौता किया तो दस हजार गुना। जब शून्य से समझौता करने का प्रतिफल ये है तो जीवंत प्राणी से समझौता करने पर किस फल की प्राप्ति होगी नि:संदेह तुम्हारा जीवन पावन हो सकता है।

तुम अपनी शक्ति का अहंकार करते हो, सामने वाले में भी शक्ति की कमी नहीं, संसार में ऐसा कोई भी प्राणी नहीं जिसमें कोई योग्यता नहीं। नीतिकार कहते हैं-

अमंत्रमक्षरं नास्ति, नास्ति मूलमनौषधं।
अयोग्यो पुरुषो नास्ति, योजकस्तत्र दुर्लभ:॥

संसार में ऐसा कोई अक्षर नहीं जो मंत्र का काम न कर सके। संसार में ऐसा कोई वृक्ष, जड़, तना, पत्ता, फल-पुष्प नहीं जो औषधि के काम न आ सके। संसार में ऐसा कोई मनुष्य नहीं जिसमें कोई न कोई योग्यता नहीं किन्तु संसार में ऐसा व्यक्ति खोजना दुर्लभ है जो व्यक्ति मानव की योग्यता का पता लगा सके जो हर अक्षर को मंत्र बना सके, हर लकड़ी को औषधि के रूप में काम में ले सके और हर मनुष्य की योग्यता की परख कर सके उसका सम्मान करके उसकी प्रतिभा को निखार सके।

महानुभाव ! संसार में जो कुछ भी है, सबके पास पात्रता है जिसको पात्रता दिखाई नहीं दे रही उसके पास अपात्रता का चश्मा लगा है। यदि पात्रता का चश्मा लगा होगा तो उसे संसार के प्रत्येक

व्यक्ति में पात्रता दिखाई देगी। आप कहेंगे महाराज श्री ! आपने बात तो अच्छी-अच्छी बतायीं किन्तु यदि घर में टकराव होता है तो कैसे सुलझायें ? यदि ऐसा कोई प्रसंग आ जाये तो सामने वाले की मान लो, नहीं मान पाओ तो मौन लो। ''मौन लो या मान लो'' टकराव नहीं बढ़ेगा। मुख से निकले शब्द अग्नि का काम कर विस्फोट कर सकते हैं। टकराव में अग्नि पैदा होती है और अग्नि से सभी दूरी बनाते हैं। आप जानते हैं गर्मी के मौसम में सभी दूर-दूर बैठना-पसंद करते हैं और सर्दी में सभी पास-पास बैठना पसंद करते हैं इसका अर्थ यही हुआ कि टकराव दूरी बढ़ाता है गर्मी दूरी बढ़ाती है और नम्र स्वभाव-शीतल स्वभाव दूरियों को कम करता है। समझौता में नम्रता है, सरलता-सहजता है और जिसके अंदर सरलता-सहजता है उसके साथ सैकड़ों खड़े हैं।

सज्जन पे सौ-सौ चलें, दुर्जन चले न एक।
ज्यों जमीन पाषाण की, ठोकें ठुकें न मेक॥

सज्जन के साथ तो सौ-सौ व्यक्ति चलते हैं किंतु दुर्जन के साथ एक भी नहीं और दुर्जन यदि घर में ही पैदा हो जाये तो उसका साथ देने के लिये माता-पिता-भाई बहिन सब दूर हो जाते हैं और सज्जन कोई बाहर का व्यक्ति भी हो फिर भी पूरा गाँव उसका साथ देने को तैयार हो जाता है। सज्जनता वह होती है 100 बार टूट-कर भी कीमत कम नहीं होती। सोने का कलश है सौ बार नहीं हजार बार तोड़ो, सोने की कीमत कम नहीं होगी और (टकराव) दुर्जनता के मायने होते हैं मिट्टी का कलश एक बार भी धोके से टूट गया तो जो घड़ा 50 रु. का था अब उसके कोई 50 पैसे भी न देगा। कहेगा उठाकर फेंक दो इसकी कंकड़ी पैरों में चुभती है।

महानुभाव ! सज्जनता, समझौता जोड़ने वाला होता है और टकराव/दुर्जनता तोड़ने वाली होती है। हिरोशिमा-नागासाकी पर हमला

हुआ, इससे क्या मिला ! थोड़े से टकराव के कारण लाखों व्यक्ति मृत्यु के घाट उतर गये। हिटलर ने अपनी तानाशाही की, उसका दु:प्रभाव सर्वत्र अशांति ही रही। उसकी सेना इतनी बफादार थी जो कहो वह करे। उसका एक सैनिक था उससे कहा 7वीं मंजिल से कूद जाओ तो उस सैनिक ने न आगे देखा न पीछे वहाँ से कूद गया किंतु इतनी सब युद्ध की तैयारी के बाद मिला क्या ? घर में भी टकराव हुआ, प्रतिफल में मिला क्या ? आप सभी पढ़े लिखे हैं-आप जानते हैं Input Output के बारे में। इतनी शक्ति नष्ट करने के बाद क्या लाभ प्राप्त होता है, कोई फैक्ट्री वाला वह हिसाब लगाता है इतने का माल आया, इतना टैक्स लगा, इतने का बेचा और इतने का लाभ हुआ। यदि Output में घाटा ही घाटा निकले तो फैक्ट्री वहीं बंद कर देगा जितनी जमापूंजी है वह भी 2-4 दिन में नष्ट हो जायेगी।

तो ये देखो कि टकराव के बाद निकलकर के क्या आया, समझौता के बाद निकलकर क्या आया। समझौता के बाद निकला-दीर्घ जीवन, सुख-शांति, आह्लाद, प्रेम-वात्सल्य, दया, मोक्षमार्ग, शाश्वत सुख ये सब निकलकर आते हैं और टकराव में बैर-वैमनस्यता, संक्लेशता, क्रोध, आर्त्त-रौद्र ध्यान, पीड़ा ये सभी दुर्भावनायें। जिसका Output अच्छा हो उस काम को करना चाहिये और जिसका Output खराब हो तो वैसा काम कभी नहीं करना चाहिये। सभी के पास बनिया बुद्धि है यदि लागत मूल्य से ज्यादा अर्जन कर लिया तो व्यापार ठीक है यदि कम है तो व्यापार बंद करो। समझदार व्यक्ति बेलेंस शीट बनाकर देख लेता है Gross यदि Loss है तो बंद करो कदाचित् Net Profit में आ जाये तब कहता है चलो देख लेते हैं उसमें भी Net loss हो गया तो बंद करो।

एक छोटा व्यक्ति भी 100 रु. के फल सब्जी खरीद कर लाता है फिर बेचता है तो शाम को देख लेता है कितना लाभ हुआ। देखा

100 के बेच दिये अभी 50 के और बचे हैं तो ठीक है। यदि 100 के खरीद कर लाया, 20 के बिके हैं जो बचे हैं वे सड़ गये तो इसका आशय है अब बेचेंगे तो ज्यादा से ज्यादा 10 रु. के जायेंगे 100 का माल 30 में बिका 70 का घाटा हुआ तो भईया ! हाथ जोड़ो चैन से बैठो। तो Output अवश्य देखें।

महानुभाव ! जीवन में ये बातें अवश्य ध्यान रखें, पहली बात मान लो या मौन लो। दूसरी बात-अरे भाई ! **अपने संबंधों को कुछ इस तरह निभा लिया करो कि कभी मान जाया करो, कभी मना लिया करो।** व्यक्ति कभी दूसरे की बात मान ले, कभी दूसरे को मना ले तो तेरे प्रेम के संबंध भविष्य में कभी टूटेंगे नहीं। जिसके जीवन में समझौता करने की क्षमता है उसे कोई परास्त नहीं कर सकता, उसे कोई दु:खी नहीं कर सकता, चाहे वह घर में हो या बाहर। कहीं भी चले जाओ जो जानता है निभना और निभाना, समझ लेना उसके पास है सुख का खजाना। जीवन में ये छोटी-छोटी बातें ध्यान रखोगे तो समझ लेना तुम्हारे जीवन में से टकराव निकल सकता है क्योंकि टकराव का रास्ता शूलों का रास्ता है, काँटों का रास्ता है, तकलीफों का रास्ता है। समझौते का रास्ता फूलों का रास्ता है, आनंद का रास्ता है, मनहर-सुखकर रास्ता है इसलिये इतना ही कहना चाहता हूँ-

जीवन को पत्थर मत बनाओ, नवनीत बना लो, पत्थर गिरेगा तो आवाज करेगा, खुद टूटेगा दूसरों को तोड़ेगा। नवनीत स्वयं में समा लेगा और दूसरों में समा जायेगा। नवनीत की तरह बनो, जो दूसरों में समा जायेगा, अपने में समा ले। आपका जीवन पत्थर जैसा नहीं जल जैसा होना चाहिये तभी आपका जीवन सुखद और शांतिमय हो सकता है। इन्हीं शब्दों के साथ अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

''श्री शांतिनाथ भगवान की जय'' ।

२. ''मैं ही क्यों''

महानुभाव ! प्रत्येक प्राणी के पास जीवंत शक्ति है, वह अपना जीवन जीने के लिये स्वतंत्र है। कुछ व्यक्ति दूसरों की जीवन शैली से बड़े प्रभावित होते हैं तो कुछ व्यक्तियों को दूसरों की जीवन शैली से आपत्ति होती है। कुछ तो कहते हैं वास्तव में उनका जीवन आदर्श जीवन है ऐसे ही जीना चाहिये तो कुछ लोग कहते हैं ऐसा नहीं करना चाहिये मुझे उसकी जीवन पद्धति पसंद नहीं। उसके क्रिया-कलाप ठीक नहीं, भाषा ठीक नहीं, उसके विचार उत्तेजना को पैदा करने वाले हैं, ऐसा व्यक्ति न स्वयं को शांति देता है न दूसरों को शांति दे पाता है। दूसरों की क्रियाओं से, दूसरों के वचनों से, दूसरों के मनोभावों से किन्हीं-किन्हीं व्यक्तियों को आपत्ति भी होती है तो कोई-कोई व्यक्ति दूसरों की क्रियाओं, वचनों व मनोभावों के लिये लालायित रहते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति अपना जीवन जिये, 'जिओ और जीने दो' हमें तुम्हारे जीवन से कोई आपत्ति नहीं, तुम्हें हमारे जीवन से आपत्ति नहीं होनी चाहिये। जिस व्यक्ति को सदैव दूसरों से शिकायत रहती है निःसंदेह वे व्यक्ति योग्य नहीं होते हैं, वे अच्छे नहीं होते न स्वयं के लिये न दूसरों के लिये। जिस व्यक्ति को कभी दूसरों से शिकायत नहीं होती वे भले होते हैं, आदर्श होते हैं, युगपुरुष होते हैं, महापुरुष होते हैं भगवान की श्रेणी में आते हैं। जिसे किसी से शिकायत नहीं है संभव ये है उससे भी अन्य लोगों को शिकायत नहीं होती।

महानुभाव ! जीवन जीने का तरीका एक तो सबकी दृष्टि में अच्छा हो सकता है, दूसरा अपनी दृष्टि में अच्छा हो सकता है। व्यक्ति दो प्रकार की सोच रखता है। एक व्यक्ति सोचता है मैं स्वयं की दृष्टि में अच्छा बना रहूँ, और एक व्यक्ति वह होता है जो सोचता

है मैं सबकी दृष्टि में चढूँ। जो सबकी दृष्टि में अच्छा बनना चाहता है कई बार वह अपनी दृष्टि में गिर जाता है, और जो अपनी दृष्टि में अच्छा बनना चाहता है कई बार समाज में व्यवहार में लोक में उसे उचित स्थान नहीं मिल पाता है। अब समस्या सामने यह खड़ी है कि व्यक्ति अपनी दृष्टि से जिये या सामने वाले की दृष्टि से जिये। यदि व्यवहार में शांति चाहिये, व्यवहार में कुशलता चाहिये, निपुणता चाहिये, व्यवहार का सुख चाहिये तो उसे सामने वाले की दृष्टि को देखकर जीना पड़ता है और अपनी दृष्टि में सुख चाहिये, अपनी आत्मा की अनुभूति चाहिये, कोई अपनी आत्मा को परमात्मा बनाना चाहता है अपनी दृष्टि में, परमात्मा की दृष्टि में तब निःसंदेह उसे अपनी दृष्टि के अनुसार, अपने ज्ञान के अनुसार अपनी विचारधारा के अनुसार चलना चाहिये।

दोनों सुख एक साथ नहीं मिलते व्यवहार का सुख और निश्चय का सुख। जो व्यवहार में सुखी है, जिसे दुनिया सुखी कह रही है, वे राजा बन गये, परमात्मा बन गये, लोक पूज्य हो गये, तीन लोक के नाथ हो गये उनके वैभव को देख करके, रुतबा देखकर आप हर्षित हो रहे हैं। हो सकता है वह राजा जिसकी आप पूजा कर रहे हैं, जिसको सम्मान दे रहे हैं, आदर्श मान रहे हैं, हृदय में बसा करके बैठे हैं हो सकता है पूरे देश का, समाज का, अपने सभी अनुयायियों का वह भगवान हो और उनकी मान्यता के अनुसार दुःखों को दूर करने वाला हो, सुखों को देने वाला हो ऐसा भी हो सकता है, किन्तु व्यवहार के सुख को भोगने वाला व्यक्ति निश्चय के सुख से वंचित ही रह जाता है।

वहीं एक योगी सिद्ध पुरुष महात्मा, जिसके शरीर पर धागा भी नहीं है, जंगल में अकेला सर्दी में नदी किनारे बैठा है, ग्रीष्मकाल में पहाड़ पर बैठा है, वर्षाकाल में वृक्ष के नीचे बैठा है तीनों ऋतुओं का

कष्ट सह रहा है, उसके शरीर को देखकर के लगता है इससे दु:खी संसार में और कोई प्राणी नहीं हो सकता। सूर्य का ताप ऊपर से तपाता है, जिस पहाड़ पर बैठा है वह पत्थर भी अंगारे सा तप रहा है, सर्दी में मौसम बड़ा सर्द है, नदी किनारे बैठने से नदी से उठने वाली शीत लहर ऐसा लगता है हृदय से पार होकर चली जा रही है, तीर हृदय से पार होता है तो उसका घाव भर जाता है किन्तु शीत लहर का घाव नहीं भर पाता। वर्षाकाल में वृक्ष से टप-टप बूँद टपक रही है ऐसा लग रहा है शरीर में छेद कर दे, शरीर में छेद हो या न हो किन्तु आत्मा को तो कष्ट दे ही रही है ऐसा सामने वाले व्यक्ति अवश्य कहते हैं।

महानुभाव ! व्यवहार में वे दु:खी दिखाई दे सकते हैं, दिन में एक बार भोजन मिलता है, कभी नहीं भी मिलता, कभी मिलता तो अन्तराय आ जाता है, कभी उपवास भी करते हैं देखो इनका शरीर कैसा जर्जर हो गया, इनसे ज्यादा दु:खी और कौन होगा? किन्तु उन संत महात्मा से पूछो-उन संत महात्मा की आत्मा में अनंत सुख उत्पन्न होने वाला है। उन्होंने जान लिया मोह दु:ख का कारण है। वे मोहनीय कर्म को नष्ट करने पर तुले हैं जैसे रावण-कुंभकर्ण-विभीषण विद्या सिद्ध करने गये, तब कितने ही उपसर्ग आये, उनके माता-पिता को रोते बिलखते दिखा दिया, और भी अनर्गल चेष्टायें दिखायीं, प्रभाव दिखाया किन्तु वे टस से मस न हुये। कुंभकर्ण-विभीषण तो चलायमान भी हुये किन्तु रावण सुमेरु की तरह से अडिग बैठा रहा।

ऐसे ही योगी पुरुष जो अपने आप में ठहर जाता है, उस ठहरे हुये योगी पुरुष को यह हवा कहाँ चलायमान कर सकती है। जो सुमेरु पर्वत प्रलय काल के तूफान से रंचमात्र भी नहीं हिल सकता वह क्या मच्छर की फूँक से उड़ जायेगा। अरे ! योगी का छोटी-मोटी प्रतिकूल बाधायें क्या बिगाड़ सकती हैं। किन्तु बाह्य दृष्टि रखने वाला व्यक्ति

सोचता है कि ये अंदर से दु:खी होंगे किंतु वे अनंत सुख का अनुभव करने वाले हैं हो सकता है सयोग केवली अवस्था को प्राप्त होने वाले हों। मोहनीय कर्म का क्षय कर 12वें गुणस्थान में पहुँच अनंतसुख को प्रकट कर लिया हो।

जो बाहर से सुखी दिखाई दे रहा है तीन खण्ड का राजा है, नि:सीम भोग सामग्री जिसके पास पड़ी है किन्तु वह व्यक्ति जो बाहर से सुखी है जरूरी नहीं कि अंदर से सुखी हो और अनुमान ज्ञान तो ये कहता है जिसका बाहर से वैभव दिखाई दे रहा है हो सकता है अंदर से खोखला हो। जो राजा अंदर से जितना खाली होता है वह अंदर के खालीपन को भरने के लिये बाहर की वस्तुओं को समेटता है, सब कुछ जोड़ता है किंतु संसार की समस्त वस्तु को भरकर भी अंदर से भर नहीं पाता।

अंदर का खालीपन भरेगा तो उस कूप की तरह जिसमें स्वयं स्रोत नीचे से नि:सृत होते हैं, जल से जैसे कुंआ भर जाता है ऐसे ही हमारे गुण जब प्रकट होंगे, ज्ञानादि गुण प्रकट होंगे तब हमारी चेतना का खालीपन भर जायेगा, वरना बाहर के किसी भी पदार्थ से अंदर का खालीपन नहीं भरा जा सकता। हम अनंत काल से अंदर के खालीपन को बाहर की वस्तुओं से भर रहे हैं इसीलिये हमारा खालीपन आज भी ज्यों का त्यों है। आचार्य भगवन् श्री गुणभद्र स्वामी जी ने लिखा-

आशागर्त: प्रतिप्राणि यस्मिन् विश्वमणूपमं।
कस्य किं कियदायाति वृथा वो विषयैषिता।।

विषयों की एषणा व्यर्थ है क्योंकि तीनों लोकों की सम्पत्ति आशारूपी गड्ढे में अणु के समान है। इस संसार में अनंतानंत जीव हैं उन सभी की इच्छाओं को पूर्ण करने में संसार की सम्पत्ति कैसे समर्थ हो सकती है? नहीं हो सकती।

महानुभाव ! हमने दो प्रकार के व्यक्ति देखे एक स्वात्म संतुष्ट और दूसरे स्वात्मदु:खी किन्तु बहिर्अवस्था में संतुष्ट दिखाई देने वाले। ये ध्यान रखना जितने लोग ऊपर से ज्यादा मुस्कुराते हैं, वे अंदर में उतने ही ज्यादा आँसू बहाते हैं।

'होठों पर हँसी बिखेर रहे, अंदर में हा-हाकार मची' ये आज मानव की पहचान रह गयी है। चेहरे पर हँसी है पर अंदर में बहुत दु:ख है। यदि थोड़ा भी कुरेद कर देख लो, बस पूछ लो-ठीक हो ? हाँ-हाँ बहुत अच्छा है, किन्तु ज्यों ही एक दो बात पूछी मानो उसकी दुखती नस पर ही हाथ रख दिया, सुना है पत्नी का स्वभाव थोड़ा आपसे विपरीत है हाँ-सो तो है। भाई आपको धोका देकर चला गया? हाँ वह तो जन्म से ही ऐसा था। पिताजी ? हाँ पिता ने तो अन्याय किया ही है मेरे साथ। एक-एक बात पूछना शुरू कर दो तो सब बात बाहर आ जाती है, होठों से मुस्कुरा रहा है अंदर दु:खों का पहाड़ छिपा है।

महानुभाव ! जीवन दो प्रकार से जिया जा सकता है। एक स्वयं को सुखी करने के लिये और एक दूसरों को सुखी करने के लिये। कुछ लोग कहते हैं मेरा तो मकसद ये है कि जो सामने वाला मुझे चाहता है वह दु:खी न हो जाये, वह कहता है यदि सामने वाला मुझे देख कर सुखी रहता है तो मुझे अंदर से शांति है आनंद है और यदि सामने वाला मेरे आनंद को दु:ख मान रहा है तो यह उसका मिथ्या भ्रम है और मैं उसके मिथ्याभ्रम को दूर न करके पुष्ट करने के लिये, अंदर से दु:खी होकर के केवल चेहरे से मुस्कुरा जाऊँ तो समझो मैं उसको भी छल रहा हूँ और स्वयं को भी छल रहा हूँ।

आज का मुख्य विषय ये ही है "मैं ही क्यों"। इस बात को समझें। व्यक्ति की सोच दो प्रकार की होती है एक सकारात्मक और दूसरी नकारात्मक। सकारात्मक व्यक्ति अच्छी बात सोचता है। सकारात्मक

सोच ही वर्तमान में मानव जीवन के लिये वरदान है और नकारात्मक सोच ही वर्तमान काल में मानव जीवन के लिये अभिशाप है। नकारात्मक सोच यदि है तो तुम्हारे घर में ही शत्रु पल रहा है जो तुम्हें अंदर ही अंदर मारता चला जा रहा है। तुम्हारी आत्मा को काट रहा है वह नकारात्मक विचार। तुम्हारा विचार ही जब काट रहा है तो बचाने वाला कौन है? घर का चिराग ही जलाने वाला है तो बचाने वाला कौन होगा? तो नकारात्मक सोच व्यक्ति को जीवन में दुःखी बनाने में कारण है। जब-जब भी जहाँ भी जीवन में नकारात्मक विचार आयेगा, उसके आते ही व्यक्ति दुःखी हो जायेगा और जब-जब सकारात्मक विचार आयेगा तब-तब व्यक्ति सुखी हो जायेगा।

एक पुष्प काँटों के बीच में रहकर भी मुस्कुरा सकता है खिल सकता है, और एक काँटा पुष्प के बीच में रहकर भी आँसू बहा सकता है। दोनों की सोच अलग-अलग है। काँटें ने पुष्प को भेद दिया, हृदय को छलनी कर डाला तब भी काँटा मुस्कुराया नहीं काँटा रो रहा है एक ही पुष्प को छलनी किया अन्य पुष्पों को छलनी क्यों नहीं कर पाया? पुष्प कहता है एक ही काँटा तो भिदा है 99 काँटे तो अभी भी बाँकी रह गये। वह आनंद ले रहा है।

महानुभाव ! सुख-दुःख हमारे ऊपर निर्भर करता है। व्यक्ति सोचता है मैं ही क्यों? अर्थात् व्यक्ति नकारात्मक रूप में सोचता है कि मैं ही क्यों ? आप में से भी कई लोग हो सकते हैं और अन्य भी हो सकते हैं जो दिन में 10-5 बार ऐसा ख्याल कर लेते होंगे कि मैं ही क्यों? आपके जीवन में कोई भी प्रतिकूलता आयी तो आप भगवान को उलाहना देने लगे-शिकायत करने लगे कि इस दुःख का भागी मैं ही क्यों? जब कि मैं आपका प्रतिदिन अभिषेक करता हूँ, फिर भी तूने मुझे ही क्यों चुना ? मैं ही क्यों अस्वस्थ हुआ या मेरे व्यापार में ही क्यों घाटा लगा या मैं ही क्यों दुर्घटना का शिकार बन

गया, मैं ही क्यों सबकी दृष्टि में गिर गया? मैं ही इस दयनीय अवस्था को प्राप्त क्यों हुआ? मैं ही निर्धन क्यों? व्यक्ति अपने आपको बार-बार कहता है मैं ही क्यों?

यह 'मैं ही क्यों' उसे अंदर से झकझोर देता है। आज हमारे पास वे आँखें नहीं हैं जिनसे हम जन्म के पूर्व का और मृत्यु के बाद का देख सकें। आज हमारे पास उस ज्ञान की क्षमता नहीं है। हमारे पास जो कुछ भी है उससे बस इस जन्म की घटना को जान पाते हैं देख पाते हैं, वह भी सभी नहीं, कुछ-कुछ घटना। इस जीवन में कितने पुण्य किये, कितने पाप किये प्रायःकर के पुण्य के कार्य तो याद रहते हैं पाप कार्य भूल जाते हैं। चलते-चलते किससे क्या कहा, किसे पैरों से कुचल दिया, कितनी हिंसा तुम्हारी गाड़ी से हुयी है वह तुम्हें कहाँ याद है किन्तु तुम्हारा यदि एक बार भी एक्सीडेंट हुआ है वह तुम पूरे जीवन में न भूल पाओगे, तुमने अपने जीवन में असंख्यात जीवों का घात किया है, उनके प्राण निकल गये वे तड़पते मर गये तुम्हें ये बात याद नहीं है, तुमसे कोई पूछे भी कि तुमने उस जीव की हत्या की, आपको याद क्या इल्म भी नहीं है।

इस भव की भी पूरी बात कहाँ याद रहती है। कई बार बातों ही बातों में सहजता में वे शब्द निकलते हैं जो अहंकार, क्रोध, मायाचारी से सने होते हैं, और कोई याद दिला दे कि तुमने ऐसा कहा तो वह कहेगा मैंने कब कहा ? कहा ही नहीं। तत्काल का अपना शब्द याद नहीं और आज से 20-30 वर्ष पहले कभी किसी ने कुछ कह दिया तो वह शब्द आज भी याद है। जो बातें याद रखना चाहिये वह तो भूल जाते हैं, जो भूल जाना चाहिये उसे याद रखते हैं।

जिस व्यक्ति के अधिक मित्र होते हैं हो सकता है याद करने बैठो तो 10-20 नाम याद आ जायें यदि दुश्मन होंगे तो उन चारों के नाम स्वप्न में भी कोई पूछ लेगा तो भूल न पाओगे, वृद्धावस्था तक

भी उन नामों को आप भूल नहीं पायेंगे, इन्द्रियाँ शिथिल हो गयीं तो न सही मुख से पर लिखकर ही बता देंगे। क्योंकि दुश्मनों को आप आठों याम हृदय में बसाकर रखते हैं और मित्रों को जुबान पर रखते हो। इसलिये मित्र जुबान से फिसल जाते हैं और शत्रु हृदय में जाकर बस जाते हैं, वह दुश्मनी जिंदगी भर निकल नहीं पाती है। कई बार ऐसा होता है इस शरीर से प्राण निकल जाते हैं फिर भी दुश्मनी निकल नहीं पाती। कई-कई भवों तक चलती रहती है।

महानुभाव ! एक टेनिस प्लेयर, जिसको बीमारी हुई, नाम था ऑर्थर ऐशे। उसने उपचार लिया जिसमें इन्जेक्शन ऐसा लग गया जिससे एक भयंकर बीमारी हो गयी, वह बड़ा परेशान हो गया। उस प्लेयर के बहुत सारे चाहने वाले थे, उन सभी के पत्र, मेल उसके पास आने लगे हम तुम्हारे प्रति संवेदना व्यक्त करते हैं, सांत्वना देते हैं, आप इतने अच्छे है आपने कभी किसी का बुरा नहीं किया आप भगवान से पूछते क्यों नहीं कि भगवान ने इस बीमारी के लिये आपको ही क्यों चुना ? वह भी सोचता है वास्तव में बात तो सही है मैं ही क्यों? वह चिन्तन की धारा में उतरता है, पुनः उत्तर देता हैं विश्व में लगभग 5-7 अरब मनुष्य हैं किन्तु उनमें से बहुत मुश्किल से 5 करोड़ व्यक्ति उस खेल को खेलने का प्रयास करते हैं, उसमें से 50 लाख व्यक्ति आगे बढ़ पाते हैं, उनमें से 5 लाख चयनित होते हैं उनमें से 50 हजार प्रतियोगिता में बढ़ पाते हैं, उन पचास हजार में से 5 हजार उच्च स्तरीय प्रतियोगिता में सम्मिलित हो पाते हैं, उनमें से भी टीम छँटकर 500 व्यक्तियों की हो पाती है, विश्वकप के लिये तैयार होती है उसमें से भी 50 व्यक्ति आये, जिनमें से 4 खिलाड़ी सेमीफाइनल के लिये निकले और फाइनल के लिये दो खिलाड़ी। उन दो खिलाड़ी में से एक टॉप पर गया, टॉप पर मैं (ऑर्थर ऐशे) गया। तब तो मैंने भगवान से नहीं कहा कि हे प्रभु ! इस जीत के लिये

आपने मुझे ही क्यों चुना, मैं ही क्यों? तो अब क्यों कहूँ कि मैं ही क्यों?

उसका यह मैसेज जब लोगों तक पहुँचा तो सब आश्चर्यचकित रह गये कि एक सोच ये भी हो सकती है कि मैं ही क्यों ? 7 अरब व्यक्तियों में से मैं ही टेनिस का सर्वोत्तम प्लेयर बना, उस समय तो मैंने नहीं कहा कि मैं ही क्यों? आज जब दु:ख आ गया तो मैं भगवान से शिकायत करूँ कि मैं ही क्यों? इसका आशय यह है कि मेरे नापने-तौलने के बाँट सब अलग-अलग हैं, लीटर मीटर सब अलग हैं। जब भगवान ने सुख दिया तब मैं कहता हूँ ये मैंने अपने पुरुषार्थ से प्राप्त किया है आज दु:ख आ गया तो कहता हूँ भगवान ने दिया है। इससे ज्यादा बेईमानी और नाइंसाफी क्या होगी?

महानुभाव ! ए.पी.जे. अब्दुल कलाम भारत के राष्ट्रपति बने, उनका जीवन भी सामान्य जीवन था, बाल्य अवस्था में अध्ययन करने के लिये भी पर्याप्त धन नहीं था। उनकी एक पुस्तक 'अग्नि की उड़ान' उनकी जीवनी में लिखा है कि मैं बचपन से अभाव में पला, अपनी माँ के कंगन गिरवी रखे तब मेरी पढ़ाई की व्यवस्था हो पायी। उच्चस्तरीय पढ़ाई करके वैज्ञानिक बनें, उसके उपरांत संयोग से राष्ट्रपति बनें। प्रकृति कभी भी किसी के साथ अन्याय नहीं करती ये शाश्वत नियम है।

सती अंजना जिसका कोई कसूर नहीं। राजा महेन्द्र-रानी हृदयवेगा की पुत्री 100 भाईयों की बहिन जिनका पाणिग्रहण संस्कार पवनंजय के साथ हुआ। पूर्व में तो पवनंजय अंजना के प्रति इतने आसक्त थे कि शादी के तीन दिन बाकी रह गये थे तब भी चैन नहीं था, रात्रि में छिपकर मिलने जाने की चेष्टा करते। इतना तीव्र मोह-प्रेम-आसक्ति किन्तु उसी अंजना को 22 वर्ष के लिये छोड़ दिया तब अंजना सोच सकती है मैं ही क्यों? प्रकृति ने इतनी बड़ी सजा देने के लिये मुझे

ही क्यों चुना ? एक दो दिन का कष्ट होता, माह-दो माह का कष्ट होता वर्ष भर का होता किन्तु पूरे-पूरे 22 साल निकल गये इस वियोग के लिये मैं ही क्यों ? क्योंकि अंजना के पास वे आँखें नहीं जिनसे वह अपना पूर्व भव देख सके कि कनकोदरी की पर्याय में उसने क्या किया था? अपनी सौत से ईर्ष्या करते हुये 22 पल के लिये भगवान की मूर्ति छिपायी, तब उसने अपने इस कृत्य के लिये क्यों नहीं सोचा कि मैं ही ऐसा क्यों कर रही हूँ। यदि व्यक्ति इस बात को सोच ले तो मैं समझता हूँ उसके जीवन में से शिकायत निकल जाये। वह जीवन में भूलकर भी नहीं कहेगा मैं ही क्यों?

अष्टम बलभद्र श्री रामचन्द्र की पत्नी महासती सीता अपने पति की अनुगामिनी रहीं। रामचन्द्र जी जब वनवास गये, भ्रात स्नेही लक्ष्मण भी गये, पतिव्रता सीता भी गयीं। वहाँ सीता का अपहरण हुआ वह अपने शील से डिगी नहीं, शील में निश्चल रही, संघर्ष का सामना किया। जब अयोध्या लौटकर वापस आयी उसके उपरांत उनके शील पर दोष लगाया गया और जब दोष लगाया तब उस अवस्था में श्रीराम ने भी उनका साथ नहीं दिया। सीता ने वन में पति का साथ दिया, जंगल में साथ रही, उस वक्त तो राम व लक्ष्मण ने रावण से युद्ध भी किया, सीता को छुड़ाकर लाये उस समय सीता की रक्षा की किन्तु आज ऐसे भयंकर वन में छोड़ दिया जैसे कोई संबंध ही नहीं था तब सीता सोच सकती थी कि मैं ही क्यों? इस संघर्ष की अग्नि में जलने के उपरांत जब मेरे जीवन में चार क्षण सुख भोगने के आये तो आज मेरे पति ने मुझे छोड़ दिया मैं ही क्यों?

पुनः लव-कुश-रामचन्द्र जी से जब मिले तो ऐसे नहीं कि जाकर कह दिया हम आपके पुत्र हैं, नहीं, युद्ध किया जब राम-लक्ष्मण को परास्त कर दिया, रथ विहीन, शस्त्र विहीन कर दिया तब जाकर चरणों में झुक गये हम आपके ही पुत्र हैं। रामचन्द्र जी ने उन्हें गले

लगाया और घर ले गये। सीता वहाँ खड़ी-खड़ी देखती रह गयी। हनुमान आदि ने कहा ये आपकी सहधर्मिणी हैं इन्हें भी महलों में आने की आज्ञा दें। राम ने कहा दुष्टे ! निर्लज्ज ! तुम सदोष हो ऐसे नहीं आ सकती। सीता ने कहा आप जो भी परीक्षा लेना चाहो, मैं देने को तैयार हूँ तब सीता ने अग्नि परीक्षा दी। उस समय सीता सोच सकती थी कि, मैं ही क्यों? किन्तु सीता ने सोचा नहीं, वे सोचती हैं जिनशासन में किसी पर अन्याय नहीं होता, मैं जो कुछ भी फल भोग रही हूँ वह मेरे पूर्वकृत कर्मों का फल है क्योंकि मैंने वेगवती की पर्याय में भी नहीं सोचा जब सुदर्शन मुनि-सुदर्शना आर्यिका भाई-बहिन एक कमरे में थे मैंने उनके बारे में लोकनिंदा की, उस समय मैंने अपने कृत्य पर नहीं सोचा मैं ही क्यों?

अवन्ति देश के महाराज उज्जैनी नगरी के शासक अरिदमन के पुत्र श्रीपाल कुष्ट रोगी हुये। 700 कोड़ियों के साथ उन्होंने अपने देश का त्याग कर दिया। मैनासुंदरी के साथ पाणिग्रहण संस्कार हुआ, जब विदेश धन कमाने गये तब रयणमंजूषा, गुणमाला आदि रानियों से उनका पाणिग्रहण हुआ। धवल सेठ ने जब उन्हें समुद्र में गिराया, भांडों ने आकर कहा ये तो हमारी जाति-कुल का है, उसके बाद अन्य कई प्रतिकूलताओं का सामना किया, उस समय उन्होंने नहीं सोचा मैं ही क्यों? क्योंकि वे जानते थे जैन दर्शन की कोई भी क्रिया बांझ नहीं आज जो कुछ प्राप्त हुआ है, पहले कुछ जरूर किया होगा उसी का सब प्रतिफल है। श्रीकंठ की पर्याय में जब मुनिराज को मैंने कुष्ठ रोगी कह दिया मेरे साथियों ने ताली बजा दी थी तब मैंने नहीं कहा ऐसा अपराधी मैं ही क्यों? उस समय इन कृत्यों का अपराधी खुद को मान लेता तो आज इस फल का भोक्ता नहीं होता। वे 700 सैनिक आज 700 कुष्ट रोगी हुये।

राजा श्रेणिक ने यदि यशोधर मुनि के गले में सर्प डाला तो नरक की आयु का बंध कर लिया। यदि वे कहें मैं महावीर स्वामी का मुख्य

श्रोता, मैं ही नरक में क्यों? क्योंकि सर्प गले में डालने वाले भी तो तुम ही थे, इसलिये व्यक्ति यह सोचने से पहले कि मैं ही क्यों? इसके पीछे कारण को देखता जाये। मैं इसलिये कि पूर्व में मैंने ऐसा कुछ किया जिसका फल मुझे ही भोगना पड़ेगा। कर्म मैंने ही बांधा है इसीलिये मैं ही भोगूँगा। जो जहर खायेगा वो ही तो मृत्यु को प्राप्त करेगा, जो काँटों को बोयेगा उसे ही काँटों की राह पर चलना पड़ेगा, जो दूसरों को फूल बिछायेगा उसे जीवन में कभी काँटे मिलेंगे ही नहीं।

जीवन में कई बार व्यक्ति जब नकारात्मक सोचता है तो जीवन में अवनति होती चली जाती है। रुक्मणी जिसने पूर्व लक्ष्मीमती की पर्याय में अपने सौंदर्य के अभिमान में आकर श्रृंगार करते समय दर्पण में मुनिराज का प्रतिबिम्ब देखकर उन्हें अपशब्द कहे, जिसके फलस्वरूप नाना कुयोनियों में भ्रमण किया, एक भव में उसने हंसनी के बच्चे को अलग किया अब वह सोचे 16 वर्ष तक मेरे पुत्र का वियोग क्यों हुआ? प्रद्युम्न का हरण हुआ क्योंकि तूने भी तो हंसनी के बच्चे को उसकी माँ से अलग किया था। यदि ऐसा कृत्य न किया होता तो यह नहीं होता। तब तुझे ज्ञान नहीं था किंतु आज जब तुझे ज्ञान हो गया, वह भी ऐसा ज्ञान जिसमें शिकायत का स्थान नहीं। नि:संदेह जो कर्म हमने किया है उसी का फल मिलेगा दूसरे के कर्म का फल हमें नहीं मिलता।

महानुभाव ! जिसे जिनशासन का ज्ञान है वह कभी नहीं सोचता मैं ही क्यों? वह कहता है नहीं ! प्रकृति ने यदि मुझे चुना है तो नि:संदेह कोई न कोई कारण है। जितने महापुरुष हुये उनमें से मर्यादा पुरुषोत्तम राम ही क्यों ? क्योंकि राम ने जिस मर्यादा को निभाया है उसे किसी और ने नहीं निभाया इसलिये मर्यादा पुरुषोत्तम की उपाधि को राम ने ही पाया है।

भक्त शिरोमणी हनुमान ही क्यों? क्योंकि हनुमान ने जो भक्ति की है ऐसी भक्ति करने वाला कोई दूसरा नहीं है। 24 कामदेवों में से बाहुबली ही विशेष क्यों? क्योंकि उन्होंने ऐसी साधना की है जिसे देख व्यक्ति नतमस्तक हो जाता है। एक वर्ष तक खड़े रहे सर्पों ने वामी बना ली, लतायें शरीर से लिपट गयीं, बालों में पक्षियों ने घोंसले बना लिये, उन्होंने ऐसी कठिन साधना की। बाहुबली की मूर्ति मिलती है अन्य कामदेवों की नहीं मिलती। तीर्थंकर तो चौबीस हैं पर भगवान पार्श्वनाथ के जिनबिम्ब प्राय:कर सर्वत्र क्यों मिलते हैं? क्योंकि वे ही एक ऐसे तीर्थंकर हुये जिन्होंने घोर उपसर्ग सहन किया। जिनके गर्भ-जन्म-तप तीन कल्याणक हो चुके ऐसे महामुनि पार्श्वनाथ पर ओले-शोले-पत्थर पानी बरसे किंतु उन्होंने सब कुछ सहन कर लिया इसलिये पार्श्वनाथ स्वामी की तपस्या को देखकर के विश्व चमत्कृत रह गया, स्वयं ही व्यक्ति की श्रद्धा बढ़ गयी।

जिसने भी जीवन में संघर्ष का सामना किया है उस व्यक्ति ने उपलब्धि भी प्राप्त की है। कई बार हम कहते हैं-व्यक्ति डरता क्यों है? डरने से कुछ होता नहीं और न डरो तब भी कुछ नहीं होता। प्रतिकूलता आनी है तो आनी है आ भी जाये तो हमारा कुछ भी बाल-बाँका नहीं कर सकती। शुद्ध हृदय से उस दु:ख को झेलता क्यों नहीं है। जो व्यक्ति दु:ख को भी सम्पत्ति मान कर सहन करता है उसके जीवन में सदा सुख ही सुख रहता है। ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं जिसके जीवन में सदा दु:ख ही दु:ख रहे। ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ सदा दिन ही दिन रहे, ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ रात ही रात रहे। ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ शुक्ल पक्ष ही रहे या कृष्णपक्ष ही रहे दोनों पक्ष बदलते रहते हैं कभी पुण्य का उदय तो कभी पाप का उदय। कभी परीक्षा दी तो कभी प्रमाण पत्र हाथ में आता है। ऐसी कोई नदी नहीं है जिसमें पानी बह रहा हो और हवा चलने पर लहर न उठे।

लहर उठती भी है और डूबती भी है, इसी प्रकार मनुष्य के जीवन में दोनों प्रकार की अवस्थायें आती और जाती हैं।

एक बात अवश्य जान लेना जो व्यक्ति आज 100वीं सीढ़ी पर खड़ा है 99 सीढ़ियाँ भी उसी ने चढ़ी हैं, पसीना तो बहाया है भले ही चढ़ते हुये आपने देखा हो या न देखा हो। जो सीढ़ी चढ़ते-चढ़ते गिर गया वह कहता है दूसरा वहाँ तक कैसे पहुँच गया? वह भी ऐसे ही पहुँचा है जैसे तुम गिरते चढ़ते पहुँचे हो।

महानुभाव ! जीवन में कभी शिकायतें न करो। जब तुम शिकायतों के साथ जीते हो तो दु:ख और बढ़ जाता है, दु:ख दुगुना, चौगुना, सौगुना हो जाता है। जब व्यक्ति आनंद के साथ जीता है तब व्यक्ति को दु:ख में भी सुख का अनुभव होने लगता है।

एक फकीर अपनी मस्ती में झूमता चला आ रहा है, सामने से आते एक व्यक्ति से टाइम पूछा। भाई साहब कहाँ सुनने वाले थे दो-तीन बार पूछा, तो उसने घड़ी को देखा और डंडा लेकर सिर पर मारा, कहा एक बज गया। फकीर तो पुन: नाचने लगा, वह व्यक्ति कहता है मैंने इसके सिर पर डंडा मारा तो भी ये आनंदित हो रहा है भाई क्या हुआ? वह बोला-भगवान तू बड़ा दयावान है तेरी कृपादृष्टि अनंत है, पूछा क्या हुआ? बोला भगवान यदि मैं यहाँ एक घंटे पहले आ गया होता, तब मैंने इससे पूछा होता कितने बजे हैं तो बारह डंडों से मेरा सिर फट गया होता, मैं तो आनंद से झूम रहा हूँ। महानुभाव! यह होती है दु:ख में से सुख निकालने की कला। जिसके पास यह कला है उसे संसार का कोई व्यक्ति दु:खी नहीं कर सकता।

हम सकारात्मक सोच के साथ जीयें। संसार में लगभग 7-8 अरब जनसंख्या है उसमें प्राय:कर सभी रोगी हैं सभी संघर्ष का सामना करते हैं फिर आप अकेले क्यों कह रहे हैं कि मेरे जीवन में ही दु:ख क्यों? यह बताओ सुखी कौन है। जब सब ही दु:ख का

सामना कर रहे हैं चाहे जो पूजा कर रहा है, तपस्या कर रहा है, या दान दे रहा है वे सभी भी दु:खी हैं वह भी तो शिकायत नहीं कर रहे, तुम शिकायत क्यों कर रहे हो।

वर्तमान काल में भारत में लगभग 129 करोड़ व्यक्ति ऐसे हैं जो रोगी कहलाते हैं। उनमें से सभी तो नहीं कहते, तुम ही क्यों कहते हो कि मैं ही क्यों? इसका आशय ये है तुमने अभी तक सिद्धान्त को अच्छे से समझा ही नहीं।

जीवन में जब भी भगवान से कहना तो ये कहना-भगवान् ! आप मुझे जीवन में इतना बड़ा पुरस्कार दे रहे हो, उस पुरस्कार के लिये मैं ही क्यों? भगवान मेरे शरीर में 5 करोड़ 68 लाख, 99 हजार 584 रोग भरे पड़े हैं उनमें से शरीर में बस एक ही रोग दिया, इतने रोगों से मुझे वंचित रखा, इतनी कृपादृष्टि आपने मेरे ऊपर की है, इस कृपा दृष्टि का पात्र मैं ही क्यों? भगवान मैंने तो पूर्व में बहुत पाप किये थे उन सबका फल मिल जाता तो नरक में भी स्थान न मिलता निगोद में जाना पड़ता किन्तु आपने मुझे मनुष्य पर्याय दी है। भगवान्! तेरे लिये 100-100 बार शुक्रया।

यदि ऐसा सोचना प्रारंभ कर दोगे तो मैं समझता हूँ आपके जीवन से दु:ख भाग ही जायेगा। यह धारणा ही ऐसा दिव्य प्रकाश है जिसके सामने किसी प्रकार का दु:ख टिक नहीं सकता।

संक्षेप में यही कि जीवन में जब भी सोचना है तो दोनों पहलुओं से सोचो। जब सुख आये तब भी सोचो मैं ही क्यों ? भगवान की कृपा दृष्टि मिले तो यही कहना-यह सब आपकी ही कृपा दृष्टि है मैं ही क्यों ? मैं इसका पात्र नहीं। गुरु की कृपादृष्टि मिल जाये तो कहना मैं ही क्यों? आपके तो हजारों भक्त हैं यह कृपा दृष्टि मेरे ऊपर ही क्यों। जीवन में जो कुछ भी अच्छाई मिली हैं, अच्छी बुद्धि मिली है

आप सोच सकते हैं मैं ही क्यों? अन्य संसारी प्राणी भी आप जैसे हैं इसलिये आप अपनी उपलब्धि को जीरो नहीं करें। अपनी उपलब्धि को जीरो करने वाला हीरो भी जीरो बन जाता है। अपनी उपलब्धि को स्वयं का पुरुषार्थ मानें, आगे भी मैं पुरुषार्थ करूँगा किन्तु एक बात ध्यान रखना उस पुरुषार्थ का कभी अहंकार नहीं करना क्योंकि अहंकार अंधकार है अंधकार में व्यक्ति ठोकर खाता ही खाता है। अहंकार पतन की सीढ़ी है जिस पर एक बार बढ़ गया तो ऊपर चढ़ा नहीं जा सकता, उतरा ही जा सकता है।

जीवन में पतन की सीढ़ी प्राप्त मत करो, उत्थान की सीढ़ियों को देखो और चढ़ने का प्रयत्न करो। मैं ही क्यों के इन विचारों को धारण करने का प्रयास करें। घर-परिवार में भी नाना प्रकार की बातें होती हैं जिन्हें देखकर आपका मन क्षुभित हो जाता है। क्षोभ को प्राप्त नहीं करना यह सोचना कि महापुरुषों ने क्या-क्या प्रतिकूलतायें सहन नहीं कीं। स्त्रियाँ सोच लें अंजना, मैना, सीता, रेवती, अनंतमती, सुरसुंदरी आदि सतियाँ हुयीं जिन पर इतने दु:ख आये उन्होंने कभी नहीं कहा मैं ही क्यों ? तुम पर थोड़ा भी कष्ट आ गया तो मुख से निकल गया मैं ही क्यों?

धन्य कुमार अकृतपुण्य बना जिसके हाथ में रत्न भी अंगारे हो गये, स्वर्ण की रस्सी मिट्टी की रस्सी हो गयी। उसने तब क्यों नहीं सोचा जब सेठ ने उसे पूजा का द्रव्य दिया था जिस निर्माल्य द्रव्य का सेवन करके वह नरक में गया जब पाप कर रहा था तब क्यों नहीं सोचा मैं ही क्यों।

महानुभाव ! ये सभी बातें जब हम सोचेंगे तो इसी जिंदगी में रस आने लगेगा। इसी जिंदगी में सुख-शांति की अनुभूति होने लगेगी। गन्ना वही है जब उसे ऊपर से चूसते हैं तो मिठास नहीं आती थोड़ा दाँतों से दबाकर रस निकालते हैं तो मिठास आने लगती है। नारियल

वही है ऊपर जिह्वा से चाटते हैं तो उसकी जटा से जीभ छिल जाती है अंदर की गरी व मिष्ट जल का स्वाद नहीं आता जब थोड़ा गहरे में जाते हैं, ऊपर के आवरण को तोड़ते हैं, मिथ्या धारणाओं के आवरण टूटते ही अंदर से सुख का गोला व मिष्ट जल प्राप्त हो जाता है। ऐसे ही हम भी अपनी मिथ्या धारणाओं को तोड़े, स्वयं को स्वयं से जोड़ें यही सुख शांति का उपाय है।

।। ''श्री शांतिनाथ भगवान की जय'' ।।

३. ''आइ वॉन्ट पीस''

महानुभाव ! धर्म ही मंगल है, धर्म जीवन को प्रमाणिकता देने वाला है, धर्म ही सुख-शांति का द्वार खोलने वाला है, धर्म ही जीवन का आधार है। धर्म है तो जीवन जीवंत है अन्यथा जीवन चलता-फिरता माँस पिण्ड है। वह धर्म जब जीवंतता को प्राप्त हो जाता है तब उसका फल हमें प्राप्त होता है। धर्म एक वृक्ष है, प्रत्येक वृक्ष पर फल लगते हैं और जिस वृक्ष पर फल नहीं लगते उस वृक्ष को लोग बहुत समय तक अपने आँगन व बगीचे में नहीं रखते। मात्र छाया के लिये लगाये जाने वाले वृक्ष अलग होते हैं, वृक्ष पुष्प व फलों की भावना से लगाये जाते हैं।

धर्म का फल है शांति। 'I want Peace' ये प्रत्येक व्यक्ति की अंतःकरण की भावना है। चाहे शब्द कोई कुछ भी कहे यदि अंतःकरण की भावना को शब्दों से कहा जाये तो सबकी एक ही भावना है कि मुझे शांति चाहिये। जैसे दूध का सार घी होता है, फलों का सार उसमें निहित शक्ति व रस होता है उसी प्रकार धर्म का कोई सार है तो समझो वह है सुख और शांति। वह सुख-शांति निःसंदेह तभी प्राप्त हो सकती है जब हम धर्म का मंथन करें। दधि का मंथन करने पर नवनीत हाथ में आता है ऐसे ही धर्म रूपी दही का मंथन हम अपनी आत्मा में तत्त्वचिंतन के माध्यम से करें, ज्ञान की मथानी के माध्यम से, संयम की रेती लगाकर जब मंथन करते हैं तब जो निकलकर आती है वह शांति होती है।

हम चर्चा कर रहे हैं कि हम शांति चाहते हैं, पर कौन सी शांति चाहते हैं? शांति के कई प्रकार हैं, आप कहेंगे शांति के प्रकार ? हाँ शांति के प्रकार हैं उन्हें आप शांति शब्द से संबोधित करते हो, ये आपकी अपनी-अपनी धारणा है, मान्यता है। कोई व्यक्ति अपनी

झोपड़ी को भी महल कह सकता है, कोई अपने महल को भी छोटी सी झोपड़ी कह सकता है। कोई व्यक्ति 10-20 रुपये प्राप्त कर भी कहता है मैं तो बहुत अमीर हूँ तो कोई व्यक्ति करोड़ों की सम्पत्ति प्राप्त करके भी कहता है कुछ भी तो नहीं है। कोई दिन में 20 रु. कमाकर भी खुश है तो कोई 20 लाख कमाकर भी दु:खी। सबकी अपनी अलग-अलग सोच है। व्यक्ति अपनी सोच और धारणाओं के अनुरूप ही सुख-शांति को प्राप्त करने में समर्थ होता है।

दूसरे की धारणा, दूसरे की सोच हमारे काम नहीं आ सकती। जैसे मेडिकल स्टोर पर रखी औषधि तुम्हारे रोग को दूर करने में समर्थ नहीं है, किसी होटल में रखा भोजन तुम्हारी क्षुधा को शांत नहीं कर सकता, किसी भी कूप-सरिता सरोवर का निर्मल-शीतल मधुर जल तुम्हारी पिपासा को शांत करने में असमर्थ होता है, उसी प्रकार दूसरे की सोच, दूसरे की धारणा, दूसरे की मान्यता जीवन को बदलने में असमर्थ होती है। जब भी अपने जीवन को बदलने की भावना पैदा हो तो सबसे पहले अपनी विचारधारा को बदलना प्रारंभ कर दो।

केवल कपड़े बदलने से शरीर नहीं बदल जाता, व्यक्ति का स्वभाव व उसकी प्रकृति नहीं बदल जाती, उसे स्वयं बदलना पड़ता है। यदि व्यक्ति का चेहरा खराब है तो दर्पण बदलना बंद करो, अपने चेहरे को बदलने की कोशिश करो। जो व्यक्ति अपने जीवन में खुद को न बदलकर के अपने मित्रों को, संबंधियों को बदलते रहते हैं वे अपने जीवन में कुछ विशेष चीज प्राप्त नहीं कर पाते। जो व्यक्ति अपनी पढ़ाई न करके केवल स्कूल बदलते रहते हैं उनका ज्ञान नहीं बढ़ता, ज्ञान के लिये स्वयं पुरुषार्थ करना पड़ेगा। किसान चाहे किसी भी खेत में हल चलाये, बिना हल चलाये तो उसे कभी दाना मिलेगा नहीं, अनाज तो तब मिलेगा जब वह मेहनत करे। मेहनत न करे तो खेत कितना ही ऊपजाऊ क्यों न हो खेत स्वयं उसे दाना देने वाला नहीं है।

प्रकृति सभी को सब देती है, कहा जाता है भगवान ने जिसे चोंच दी है उसे चुग्गा भी मिलता है, मिलता सभी को है, किन्तु प्रकृति ने कभी किसी चिड़िया के घोंसले में दाना पहुँचाया हो तो बताओ, यदि कभी किसी पशु के लिये चारा उसकी गुफा में पहुँचाया हो तो बताओ? मनुष्य को भी प्रकृति देती है यदि मनुष्य के पास एक मुख है तो दो हाथ भी दिये हैं जिनसे पुरुषार्थ कर सकते हैं।

केवल चाहने मात्र से कुछ नहीं मिलता। हम शांति चाहते हैं उसके लिये प्रथमत: निर्णय यह कर लें कि हम कौन सी शांति चाहते हैं और दूसरी बात निर्णय यह करना है कि क्या चाहने मात्र से शांति मिल जायेगी। यदि चाहने मात्र से शांति मिल गयी होती तो संसार में कोई भी व्यक्ति अशांत नहीं होता। चाहने के साथ-साथ पुरुषार्थ करना पड़ता है। एक महिला चाहती है मेरी रसोई तैयार हो जाये और जाकर बैडरूम में सो जाये तो रसोई न बनेगी, कोई किसान चाहे कि मेरे खेत में बहुत अच्छी फसल आ जाये, किंतु वह खेत में जाकर हल न चलाये, सिंचाई न करे, बीज का वपन न करे तो क्या उम्मीद है कि उसके खेत में फसल आ जायेगी? एक विद्यार्थी बिना पढ़े सोचता है मेरे नंबर अच्छे आ जाना चाहिये, पुस्तकों को खोला भी नहीं और परीक्षा देने पहुँच गया तो क्या चाहने मात्र से उसके अच्छे नंबर आ जायेंगे? आप ये सब जानते हैं कि चाहने मात्र से काम नहीं चलता है चाहने के साथ-साथ हमें कुछ और भी करना पड़ता है। वह करना भी जरूरी है, उसके बिना तो कुछ है ही नहीं।

पहले निर्णय करते हैं हमें शांति कौन सी चाहिये। छ: प्रकार की शांति आपके सामने प्रस्तुत करते हैं जो आप चाहते हैं उसे चुन लीजिये। एक भिखारी भूखा है जिसे तीन दिन से भोजन नहीं मिला, जब सामने उसे सेठ दिखाई दिया तो उसकी आँखों में चमक आ गयी। सेठ भोजन करने बैठा ही था, सामने भिखारी को देखकर अपना

भोजन दे दिया, वह भिखारी भोजन करके संतुष्ट हो गया। वह कहता है हे भगवन् ! आज आपने जो मुझे शांति दी है वह शांति सबको मिले। एक व्यक्ति कराहता हुआ आया उसके पैर में काँटा लगा हुआ था वह वेदना से बहुत पीड़ित था, ज्यों ही काँटा निकाला, कहने लगा-बड़ी शांति मिली। किसी के पैर में फोड़ा हो गया जिसके कारण न बैठे चैन, न लेटे चैन, ज्यों ही डॉक्टर ने वह स्थान सुन करके पस निकाल दिया, उसे शांति मिली, इसे भी लोग शांति कहते हैं। पहली शांति है-

१. वेदना में कमी-वेदना में जब-जब कमी आती है चाहे क्षुधा की वेदना हो, चाहे पिपासा की वेदना हो, चाहे राग की वेदना-पीड़ा हो जब-जब भी उस दर्द में कमी आती है तब-तब व्यक्ति शांति का अनुभव करता है। धूप से तपता हुआ व्यक्ति यदि छाया में आकर बैठ जाता है, कहता है बड़ी शांति मिल गयी, कंठ सूखा हुआ है सरोवर के किनारे शीतल जल का पान करता है, बस ! शांति मिल गयी।

२. प्राकृतिक प्रकोप का अभाव हो जाना-कोई भी प्राकृतिक प्रकोप चाहे भूकंप, महामारी, अग्नि की भीषण ज्वाला हो। प्राकृतिक प्रकोप के अभाव हो जाने पर शांति मिलती है। बहुत गर्मी थी, जून का महीना था ऐसा लग रहा था जैसे अग्नि की बरसात हो रही हो, तापमान 50 डिग्री को पार करके जा रहा है उस समय अचानक ही आकाश में बादल आये और वर्षा हो गयी, उस समय कहते हैं बड़ी शांति मिली। अचानक ही जो महामारी फैली थी वह ठीक हो गयी तो कहते हैं बड़ी शांति मिली और भी किसी प्राकृतिक प्रकोप से बचे तो यही कहते हैं भगवान् ! तेरा लाख-लाख शुक्रिया जो आपने मुझे ऐसी शांति दी।

३. लौकिक कार्यों को सम्पन्न करने पर-लोक व्यवहार में इसे भी लोग शांति कहते हैं। एक व्यक्ति विगत तीन वर्षों से अपने मकान

को बना रहा है मकान बनाते-बनाते थक गया, कभी राजमिस्त्री भाग जाता है, कभी सामान नहीं है, कभी कुछ हो गया, कभी किसी का जन्म-किसी की मृत्यु आदि-आदि परेशानियाँ उपस्थित हो रही हैं जिसके कारण वह निर्माण कार्य नहीं हो पा रहा। उसके दिमाग में टेंशन है, चित्त बड़ा अशांत है, जो काम तीन महीने में हो जाना चाहिये उसे तीन साल हो गये, आज चौथे साल में वह कार्य पूर्ण हुआ भगवान् आपका शुक्रिया ! बड़ी शांति मिल रही है।

एक पिता अपनी बेटी के विवाह के लिये पिछले चार वर्षों से लगा हुआ है चप्पल घिस गयीं, चेहरा फक्क पड़ गया संबंध की बात बनते-बनते बिगड़ जाती है, अब उसे न रात को नींद आती है, न भोजन सुहाता है, जहाँ भी जाता निराशा ही हाथ लगती। पत्नी रोज-पूछती क्या हुआ, मित्र-आस-पास के संबंधी पूछते हैं बिटिया के विवाह का क्या हुआ? वह कहता है अरे ! कोई हाथ ही नहीं रखता। पुनः अशांत हो जाता है। कई वर्षों से इस बात से परेशान है किन्तु आज उसने अपनी बेटी के हाथ पीले कर दिये, जैसा घर और वर चाहता था वैसा ही वर और घर मिल गया बड़ी, धूमधाम से बिना विघ्न बाधा के अपनी बेटी की शादी सम्पन्न कर दी, आज वह चैन की नींद सो रहा है। पूछा-क्या हुआ भाई? आज मुझे शांति मिल गयी। लौकिक कार्यों को पूर्ण करके भी चित्त में शांति आती है, उसे भी आप शांति ही कहते हैं।

५. पारमार्थिक कर्त्तव्य करने पर-आपने किसी गरीब व्यक्ति की सहायता कर दी तो आपके अंदर में आनंद आ रहा है आपने आज भगवान का पहली बार अभिषेक किया है-विधान किया है आपको बहुत आनंद आ रहा है, शांति मिल रही है अब लग रहा है जीवन तो सफल इससे होता है। जीवन में पहली बार किसी मुनि महाराज को स्वयं ही पड़गाया, आहार कराया, स्वयं ने ही पूरा बनाया भी था,

आज आपको इतना आनंद आ रहा है आप कह रहे हैं तीन लोक का राज्य भी इसके आगे फीका है, जो शांति आज मुझे मिल रही है वह किसी को न मिली होगी। या आज जीवन में पहली बार णमोकार मंत्र की माला फेरी या स्वाध्याय किया या आज जीवन में पहली बार उपवास किया है, जीवन में पहली बार कोई व्रत संयम नियमादि लिये हैं आज उसे विश्वास हो गया है कि इन छोटे-छोटे नियमों से ही आगे महान् व्रतों को धारण कर परमात्मा बन सकता हूँ तो उसके आनंद का कहीं ठिकाना नहीं। क्योंकि छोटी-छोटी पानी की बूंद जब इकट्ठी होती हैं तो केवल नाला या गड्ढा नहीं बनतीं वे नदी-सरोवर भी बन जाती हैं। तो परमार्थ के कार्य करने पर भी शांति की प्राप्ति होती है।

आप देखना जब-जब भी कोई परमार्थ का काम होता है तो सामने वाले के चेहरे की चमक को देखकर आपका हृदय कमल खिल जाता है। किसी रोते हुये व्यक्ति को आपने हँसा दिया, उसको आनंद आ गया उसके चेहरे पर मुस्कुराहट देखकर के तुम्हारा हृदय कमल ऐसे ही खिल जाता है जैसे सूर्य का उदय होने पर कमल खिलते हैं। जिसको आप प्राणपन से चाहते हैं वह कष्ट या बाधा में है यदि वह उस कष्ट से मुक्त हो जाता है, उसके चेहरे पर प्रसन्नता दिखाई देती है तो उसके चाहने वाले बड़े आनंद का अनुभव करते हैं कहते हैं शांति मिल गयी।

६. विषय कषायों से रहित होकर-जब इन सबसे निर्मुक्त होकर योगी अपने अंदर आता है, जब वह पर से अपना नाता तोड़ता है, तो पर से नाता तोड़ने के पहले वह शांति के कारणों को खोजता है। पूज्य भगवन् आचार्य समंतभद्र स्वामी से पूछा कि शांति का उपाय क्या है, उन्होंने 16वें तीर्थंकर शांतिनाथ प्रभु की स्तुति करते हुये स्वयंभू स्तोत्र में कहा-

स्वदोष शान्त्या विहितात्म शान्तिः,
शान्तेर्विधाता शरणं गतानाम्।

भूयाद् भवक्लेश भयोपशान्त्यै,
शान्तिर्जिनो मे भगवान् शरण्यः॥

अपने दोषों को शांत करने से ही शांति मिलेगी। यदि कहीं किसी मकान के अंदर आग लगी है, बाहर में मोटी-मोटी दीवारें हैं, मकान के अंदर रखा फर्नीचर वस्त्रादि जल रहे हैं आप पानी वहाँ न डालकर बाहर खड़ी मोटी दीवारों पर पानी डालें तो आग नहीं बुझेगी। उसे बुझाने का उपाय यही है कि जहाँ अग्नि लगी है वहीं पर जल को डालना चाहिये। चेहरे पर लगा दाग चेहरे को साफ करने से ही दूर होता है दर्पण को साफ करने से नहीं होता और खुद के चेहरे पर दाग लगा है तो खुद का चेहरा ही साफ करना पड़ेगा, दूसरे के चेहरे को साफ करने से खुद का दाग नहीं धुलेगा।

महानुभाव ! अपने चित्त में शांति चाहिये तो अपनी ही कषायों को शांत करना पड़ेगा, जिस महापुरुष ने अपने अंदर की कषायों को शांत कर दिया उसने अंदर की शांति को प्राप्त कर लिया। शांति तभी मिलती है जब अशांति के कारणों को शांत कर दिया जाये। तुम्हें क्रोध आ रहा है, क्रोध तुम्हारा है जिसके कारण तुम तड़प रहे हो, आकुल-व्याकुल हो रहे हो उसी क्रोध को यदि तुमने शांत कर लिया तो शांति मिल गयी। अहंकार के कारण सीना फुला कर चलते चले जा रहे हो किन्तु स्वतः ही ठोकर खाकर गिर पड़े पुनः होश आया, मैं ऐसे हाथी की तरह क्यों चल रहा था मैं तो चीटीं की तरह चलने लायक भी नहीं था। अपने अंदर से बोध आ गया, अपनी मान कषाय को दबाया, नम्र वृत्ति धारण कर ली तो शांति का अनुभव हुआ।

जिस मायाचारी के कारण आपको नींद नहीं आ रही थी, जिसके कारण आपको लग रहा था कि ये तो वह आरी है जो हमारी आत्मा को काटने वाली है, उस मायाचारी को अपनी आत्मा से दूर रखकर देखा सरल और सहज बने तो बहुत शांति का अनुभव हुआ। लोभ की

प्रवृत्ति ऐसी कि मुझे सब कुछ मिले, लोभ के कारण आपको जो प्राप्त हुआ था उसका आनंद नहीं ले पा रहे थे। आप सद्भाव का आनंद नहीं ले पा रहे, अभाव के लिये तड़प रहे थे। संसार के अधिकांश प्राणी ऐसे होते हैं जिसके पास जो नहीं है उसके लिये तो तरस रहा है, जो है उसका आनंद नहीं ले रहा।

पहले जमाना ये था कि शांति की खोज में व्यक्ति जंगलों में जाता था कि वहाँ शांति मिलेगी आज शांति को छोड़कर के महल की खोज करने जा रहा है, मुझे महल मिल जाये। बस इतना बदलाव आ गया है। पहले जमाना था कि पत्थरों का युग था, आज भी पत्थरों का युग है बस अंतर इतना है आज पत्थरों की बिल्डिंग नहीं पत्थरों के आदमी बन गये हैं।

शांति की खोज करने के लिये हमें अशांति के कारणों को छोड़ना पड़ेगा। संसार-भोग-शरीरासक्ति शांति के कारण नहीं हैं इन तीनों को छोड़ दो। संसार से प्रीति मत करो, वैसे ही रहो जैसे जल में कमल रहता है। संसार में रहने की कोई मनाही नहीं है संसार में रचपच के मत रहो। यदि संसार में ऐसे रहोगे जैसे दूध में घी रहता है तो दूध जब भी गर्म किया जायेगा तो घी को भी गर्म होना पड़ेगा। संसार में जल में कमल की तरह रहो जैसे कमल ऊपर रहकर जल में से अपना आहार ग्रहण करता है, सूर्य की किरणों से ग्रहण करता है और बढ़ता चला जाता है किंतु जल को छूता भी नहीं है। संसार में रहो, भरत चक्रवर्ती की तरह अलिप्त रहो। कमल पत्र पर पड़ी ओस की बूंद ज्यादा देर तक ठहरती नहीं है ऐसे ही तुम्हारे में संसार आये तो फिसल जाये ज्यादा देर तक ठहर नहीं पाये। तो चारों कषायों को शांत करने पर ही शांति प्राप्त होती है। अंतिम शांति है-

७. तीनों प्रकार के कर्मों का सम्पूर्ण नाश होने पर-द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म का सम्पूर्ण नाश होने पर, सिद्ध-शुद्ध आत्मा को शांति मिलती है वह भी एक शाश्वत शांति है।

यह छः प्रकार की शांतियाँ हैं। अब आप पहले खोज ये कर लो कि आपको कौन सी शांति चाहिये ? इनमें ऐसी शांति चुनें जिससे जीवन में बार-बार शांति का प्रयास-पुरुषार्थ न करना पड़े शाश्वत शांति प्राप्त हो।

महानुभाव ! मैं तो आपको यही सलाह दूँगा कि चाहे देरी से सही उस शांति को चुन लो जिसके बाद दुबारा चुनना न पड़े। धर्म ऐसा चुनो जिसे दुबारा छोड़ना न पड़े, कर्म ऐसा करो जिसे दुबारा करना न पड़े, शांति वह प्राप्त करो जिसके उपरांत कभी अशांति न आये। मृत्यु ऐसी वरो जिसके उपरांत पुनः कभी मृत्यु का मुख न देखना पड़े।

जीवन में शांति प्राप्त करना है, विषय भी यही है "I want Peace' । सामान्य सी बात है मैं शांति चाहता हूँ यह एक उपदेशक वाक्य है, कोई भी कह सकता है। किन्तु जब व्यक्ति ये कहे मैं शांति को प्राप्त करके ही रहूँगा, उस समय उसकी शांति में कोई बाधक नहीं बन सकता। मैं-शांति-चाहता हूँ। अभी मैं अलग है, चाहना अलग है, शांति अलग है।

सही मायने में देखा जाये तो मैं और चाहना शांति के बाधक हैं। व्यक्ति मैं-मैं कह तो रहा है पर वास्तव में मैं हूँ कौन ? इस बात का परिचय ही नहीं हुआ, स्वयं से परिचय जब तक नहीं हुआ तब तक शांति कौन चाहता है। शांति शरीर चाहता है क्या? यदि शरीर शांति चाहता है तो ठीक है गर्मी लग रही तो ए.सी. मैं बैठ जा, सर्दी लग रही है तो हीटर चालू कर बैठ जा, भूख लग रही है तो भोजन कर लो, प्यास लगे तो पानी पी लो, शरीर को शांति चाहिये, किंतु आत्मा शरीर को एक ही मान लिया है शरीर की शांति के तो अनेक उपाय हैं। सबसे पहली बात तो ये है कि मैं कौन हूँ इसकी खोज करना है।

आइ (I) का अर्थ हिन्दी में मैं होता है, संस्कृत में कहें तो अहं। अहं का अर्थ हिन्दी से लगाते हैं तो मान अहंकार। जब मैं शब्द बोलता है व्यक्ति, जब तक मैं में अटक कर रहता है तब तक वह वास्तविक स्वरूप को नहीं जानता। मैं एक ऐसा दरवाजा है जिस दरवाजे को तोड़कर अपने चिन्मय, चैतन्यमय स्वरूप को देखा नहीं जा सकता। जब मैं का भूत अलग हो जाये, तब जानता है वास्तव में मैं हूँ कौन। मैं हूँ मय अर्थात् चैतन्य मय। यदि कहें मैं मय हूँ अर्थात् चैतन्य चैतन्यमय है। जो है वह उसी मय है। जल जलमय है, अग्नि अग्निमय है, ऐसे ही मैं मयरूप हूँ। जिसको मैं अभी तक समझ रहा था, वह मैं नहीं हूँ, मैं तो कुछ और हूँ।

ये अहंकार व्यक्ति के जीवन में जब आता है तब नि:संदेह उसकी आँखों पर पट्टी बंध जाती है। अहंकार जब जीवन में आता है तब उसकी गति कितनी भी बढ़ जाये किन्तु एक बार धराशाही अवश्य होता है। अहंकार जब लम्बाई बढ़ाता है तो सिर आकाश तक पहुँच जाता है, पैर जमीन पर नहीं टिकते। अहंकार व्यक्ति के जीवन में उत्पन्न होता है उसकी वृद्धि उस अग्नि के धुयें के समान होती है जिसका कोई वजूद नहीं होता वह तो सिर्फ दूसरों की आँखों में आँसू देने वाला होता है, अहंकार से कभी सुख-शांति नहीं मिली। जब मैं का सिर जीवन में उच्च अवस्था को प्राप्त होता है तब जीवन में से प्रेम, नम्रता, वात्सल्य-करुणा-दया धर्म सब बाहर निकल जाते हैं। जब मैं का स्वर मंद होता है तब जीवन में प्रेम, करुणा, मैत्री, प्रमोद, विनय, भक्ति आदि भावों का जन्म होता है। किन्तु तभी जब मैं की चट्टान को अलग हटाकर रख दें।

आपका खेत कितना भी अच्छा हो, उसमें बहुत अच्छा बीज बोया, खाद दी, सिंचाई की किंतु उसके ऊपर एक शिला रख दी तो क्या उसमें से कभी अंकुर पैदा हो पायेगा? नहीं। ये पत्थर लगाना तो

बहुत बड़ी बात हो गयी। किसान लोग जानते होंगे यदि सरसों आदि बो दी हो ऊपर से थोड़ी बारिश हो जाये, बारिश से मिट्टी की पपड़ी जम जाये, पपड़ी को तोड़कर के सरसों का अंकुर पैदा नहीं हो पाता। थोड़ी सी पपड़ी को वह अंकुर झेल नहीं सकता तो अहंकार की चट्टान को कैसे-झेल पायेगा।

महानुभाव ! आई का अर्थ दूसरा भी होता है। अंग्रेजी की अपेक्षा से देखें तो eye 'आँख' अर्थात् दृष्टि। मैं कौन हूँ? वास्तव में मैं वह हूँ जिसमें दर्शन और ज्ञान साथ-साथ हैं। मैं दर्शन ज्ञान से युक्त हूँ। देखना हमेशा निर्विकल्प होता है। ज्ञान सविकल्प होता है। मैं वह हूँ जहाँ कोई विकल्प नहीं है। मैं वह हूँ जो संसार के समस्त पदार्थों को ज्यों का त्यों जानता हूँ। उस स्वरूप को प्राप्त करने के लिये यदि हम आगे बढ़ते हैं तब शांति हमसे दूर नहीं। जब तक हमने शांति का परिचय नहीं किया, और मैं का परिचय नहीं किया, तब तक कुछ भी करते रहो, अंधेरे में लाठी चलाने के समान है। थक जाओगे, शत्रु तो पीछे छिपा है दिख नहीं रहा, अब तुम कितनी ही लाठी चलाते रहो क्या होने वाला है।

ऐसे ही व्यक्ति जब अपनी मय को नहीं जानता, चेतना को नहीं जानता, जिसे प्राप्त करना चाहता है उसे नहीं जानता तो बाहर घोड़े दौड़ाने से क्या होगा? जब तुम्हें मंजिल का ही नहीं मालूम तो जाओगे कहाँ? जिस लिफाफे पर पता ही नहीं लिखा उस लिफाफे को चाहे कोरियर से भेजो या स्पीड पोस्ट से भेजो क्या अर्थ निकलने वाला है। तुम दौड़ रहे हो तो पहले मंजिल का चयन किया या नहीं किया, यदि मंजिल का चयन नहीं किया तो उस दौड़ का अर्थ कुछ भी नहीं है, वह दौड़ अनर्थकारी भी हो सकती है, व्यर्थ तो है ही। आपको ऐसे गर्त में ले जाकर पटक सकती है जहाँ से निकलना बड़ा मुश्किल हो जाये।

दो शब्द समझ में आये-पहला 'मैं' दूसरा 'शांति' जो छः प्रकार की देखी, तीसरा है want सामान्य अर्थ देखें तो चाहना होता है। मैं चाहता हूँ। मुँह बंद करके बैठ गये और कहो बोलना चाहता हूँ, तो यह कैसे संभव है। आँख बंद करके बैठ गये और देखने का प्रयास कर रहा हूँ पहली बात तो मेरी आँखों में ज्योति ही नहीं है, दूसरी बात मैंने आँख बंद कर ली, फिर मैं देखना चाहता हूँ। तो आँख बंद करके जिन नेत्रों में ज्योति नहीं है, तो कैसे देखोगे ? कितना ही काल निकल जाये देख नहीं पाओगे। मैं मित्र से मिलना चाहता हूँ पर शर्त यह है कि तुम मेरे पास आना नहीं, मैं भी घर से निकलूँगा नहीं तो यह मिलना कैसे संभव है। सौगंध खाली है कि मैं विभाव को छोड़ूँगा नहीं और स्वभाव को प्राप्त करने की कोशिश करूँगा नहीं, पर मैं परमात्मा बनना चाहता हूँ, संसार को छोड़े बिना मुझे मोक्ष मिल जाये यह कैसे हो सकता है ?

महानुभाव ! हमारे जीवन में भी ऐसी विसंगतियाँ हैं, जो विसंगति एक-दूसरे के विपरीत हैं। कुछ चीजें ऐसी होती हैं जो चाहने से नहीं मिलती, बिना चाहे मिलती हैं। शांति एक ऐसी ही चीज है जो चाहने से मिलती ही नहीं है। दौड़कर के सब चीजें प्राप्त नहीं की जा सकती हैं। कुछ चीजें बैठकर के प्राप्त की जा सकती हैं। बैठने का आनंद, दौड़कर के ले सकते हो क्या? आँख बंद कर आने वाला आनंद आँख खोलकर ले सकते हो क्या? निरोगता का आनंद सरोग अवस्था में ले सकते हो क्या? नहीं ले सकते। ऐसे ही कुछ चीजें हैं जो चाहने से नहीं मिलती, शांति से बैठने पर मिलती हैं। शांति से नहीं बैठोगे, कुछ भी करते रहो-वह नहीं मिलेगी। आप बचपन में एक पहेली का अर्थ पूछते होंगे?

''लग-लग ना लगे, बिना कहे लग जाये, बताओ क्या है?

वह है होंठ। यदि लग-लग शब्द कहोगे तो होठ नहीं लगेंगे, बिना शब्द कहते ही होठ लग जायेंगे। यह तो एक पहेली थी ऐसे ही

जो हमारी शांति है वह चाहने से नहीं मिलेगी चाहो-चाहो तो चाहने वाला तो भिखारी होता है, शांति मिलती है सम्राट को ? जिसके जीवन में कोई चाह नहीं।

चाह गयी, चिंता मिटी, मनवा बे परवाह।
जिनको कछु न चाहिये, वे शाहन के शाह॥

शांति ने सौगंध खाकर रखी है जो मुझे नहीं चाहेगा मैं उसके पास रहूँगी और जो मुझे चाहता रहेगा, तब तक मैं उसके पास नहीं जाऊँगी क्योंकि मेरी भी कुछ सत्ता है, प्रभुत्व है-अस्तित्व है कि मैं उसके पास नहीं जाऊँगी जो मेरे पास मांगने आता है। ये शांति ऐसी चीज नहीं है जो भीख में मिल जाये, वसीयत में या भेंट में मिल जाये, छीनकर मिल जाये, उधार से या दबाव से मिल जाये, वह शांति तो स्वभाव से पैदा होने वाले चीज है। एक बात और है, ये शांति कभी सौत के साथ नहीं रहती अकेली ही रहती है। यदि शांति के साथ कुछ और चाहते हो तो जो और चाहते हो उसी को प्राप्त कर लो वह कहती है मैं आऊँगी नहीं। सबको छोड़ दोगे तब तो मैं अकेली रह सकती हूँ, सबको ग्रहण करोगे तो सबको ही ग्रहण करो फिर मैं नहीं आ सकती। ये शर्त है।

अब शांति मिले तो कैसे मिले ? हम उन शर्तों को मानने के लिए तैयार नहीं, हम चाहते हैं, जीवन में थोड़ी-थोड़ी अशांति भी रहे।

एक रोग पाल ले नादान जिंदगी के वास्ते।
सिर्फ सेहत के सहारे जिंदगी कटती नहीं॥

जीवन में कोई तकलीफ न हो तो नयी तकलीफ पैदा कर लेते हैं। डिमाण्ड न हो तो पैदा कर लेते हैं। और तुम कहीं भूल जाओ तो आमने-सामने, अड़ौसी-पड़ौसी आकर कहते हैं अरे! तुम शांति से

बैठे हो, वे शांति से नहीं बैठने देते। तुम्हारा शांत बैठना भी उन्हें अखरता है। परमपूज्य आचार्य गुरुदेव श्री विद्यानंद जी मुनिराज कई बार शांति से बैठे हों, कोई व्यक्ति आकर चर्चा करे तो वे कहते हैं तुम्हें हमारा शांति से बैठना अच्छा नहीं लगता क्या? दर्शन कर लिये अब जाओ। तो यदि शांति से बैठ जायें तो वह बैठना दूसरों को अच्छा नहीं लग रहा, वह कहता है मैं अशांत बैठा हूँ तो तुम शांति से कैसे बैठे हो। वह शांति की प्राप्ति के लिये धमाचौकड़ी करता है और चाहता है सामने वाला भी ऐसी ही धमाचौकड़ी करे।

एक व्यक्ति जंगल में गया और शांति से पेड़ के नीचे बैठकर अपनी बाँसुरी बजाने लगा, वह झूम रहा है, उसे ऐसा लग रहा है कि सौधर्म इन्द्र जैसा वैभव तो मेरे चरणों में पड़ा है। वह भगवान की भक्ति में लीन उसका रोम-रोम पुलकित हो रहा है, आनंद के आँसू भी बह रहे हैं, सामने से उसका मित्र आया और उसे झकझोरा बोला-मूर्ख ! उठ यहाँ क्या कर रहा है? वह बोला शांति से बैठा हूँ। मित्र ने कहा-चल मेरे साथ, देख गर्मी का समय है सभी वृक्ष सूख गये हैं अपन चलते हैं लकड़ी काट कर लाते हैं। वह व्यक्ति बोला लकड़ी से क्या करेगा? अरे! लकड़ी को बाजार में बेचेंगे तो पैसे मिलेंगे। चलो पैसे मिल गये फिर क्या करेंगे ? भाई! जब पैसे मिल जायेंगे तो हम बार-बार लकड़ी बीनने नहीं आयेंगे, अपने दो-चार नौकर लकड़ी बीनने लगा देंगे, अपन दुकान खोलकर बैठ जायेंगे। चल दुकान भी खोल ली अब क्या करोंगे ? फिर दुकान नहीं बड़ी फैक्ट्री खोल लेंगे, नगरों-नगरों में लकड़ी के गोदामों, दुकानों में अपना माल भेजेंगे। खूब सारा काम चलेगा। चल मान लिया खूब काम चल गया उससे क्या होगा? उससे मैं नगर सेठ बन जाऊँगा, चल तू नगर सेठ भी बन गया फिर क्या करेगा ? अरे मेरी बहुत फैक्ट्री होगीं, बहुत पैसे कमाऊँगा।

माना ऐसा भी हो गया फिर क्या करेगा? फिर मेरे पास राजा से ज्यादा सम्पत्ति होगी, उससे ज्यादा प्रभुत्व मेरा होगा, सभी मेरी आधीनता स्वीकार करेंगे मैं ही देश का राजा बन जाऊँगा। चल मान लिया-तू देश का राजा बन गया फिर? फिर क्या मैं शांति से थोड़े ही बैठूँगा, मैं आस-पास के छोटे-छोटे राजाओं के राज्य को अपने अधीनस्थ कर लूँगा, चल मान लिया वे तेरे अधीनस्थ हो गये फिर क्या करेगा ? फिर तो मैं चक्रवर्ती बन जाऊँगा, चल मान लिया तू चक्रवर्ती बन गया, फिर क्या करेगा ? फिर मैं महलों में रहूँगा आराम से, राज्य का संचालन करूँगा? जब राज्य में रहते-रहते तू थक जायेगा, राजकीय समस्याओं से परेशान हो जायेगा, फिर तू क्या करेगा? अरे क्या करूँगा, मैं रथ पर सवार होकर जंगल की सैर करूँगा और जैसा ये बगीचा है न, ऐसे ही बगीचे में आराम से वृक्ष के नीचे बैठकर चैन की बाँसुरी बजाऊँगा। वह व्यक्ति बोला अरे मूर्ख! उस चैन की बाँसुरी को तू इतनी धमाचौकड़ी कूदने के बाद बजायेगा, वही काम तो मैं आज कर रहा हूँ।

व्यक्ति को ये लगता है, जो अशांत है वह सोचता है तू मेरी बुद्धि से चल। जैसा मैं चल रहा हूँ वैसा चल, किन्तु नहीं, प्रत्येक व्यक्ति के पास अपनी बुद्धि है, क्षमता है, योग्यता है। वह अपनी अन्तरात्मा की आवाज सुने। हमारी गलती हमारी आत्मा जानती है, हमारी गलती का सुधार हम स्वयं न करना चाहें तो विश्व का कोई व्यक्ति हमारी गलती को सुधार नहीं सकता। ये हमारे ऊपर निर्भर करता है कि हम अपनी बुरी आदतों को कब सुधारते हैं।

''जो बुरी आदतों को जल्दी बदल देते हैं वे भले आदमी हैं। बुरी आदत को तुम मिट्टी में मिला दो यदि तुमने बुरी आदतों को मिट्टी में नहीं मिलाया तो वे बुरी आदतें तुम्हें मिट्टी में मिला देंगी।'' वे तुम्हें नष्ट करें उससे पूर्व अपनी बुरी आदतों को सुधार लेना चाहिये। दूसरों

से अपेक्षा नहीं करना है, दूसरा कुछ कर भी नहीं सकता, स्वयं पुरुषार्थ करो, दूसरा तुमसे क्या कह रहा है वह छोड़ो, तुम्हारी आत्मा तुम्हें क्या कह रही है वह सुनो। यदि तुम्हारी आत्मा तुम्हें अच्छा आदमी कह रही है तो पूरा विश्व मिलकर भी तुम्हें बुरा नहीं बना सकता और तुम्हारी आत्मा तुम्हें धिक्कार रही है तो पूरा विश्व मिलकर भी तुम्हारी पूजार्चना सेवा करे तब भी उससे कुछ होने वाला नहीं।

महानुभाव ! शांति मिलती है चित्त में। शांति हमारी आत्मा का गुण है वह आत्मा में ही मिलेगा, आत्मा के अतिरिक्त कहीं नहीं मिलेगा। अग्नि की ऊष्णता अग्नि में मिलेगी, जल की शीतलता जल में मिलेगी जिसका जो स्वभाव है वह उस ही में मिलेगा। आकाश का खालीपन आकाश में मिलेगा, धर्म का गति हेतुत्व गुण धर्म द्रव्य में मिलेगा, अधर्म द्रव्य का स्थिति हेतुत्व गुण उस ही में मिलेगा, काल का वर्तना गुण उसी में मिलेगा अन्यत्र नहीं मिलेगा। यह सब बातें आप जानते हैं तो फिर आत्मा का गुण शांति वह पुद्गल के पिण्ड में कैसे मिलेगा? नहीं मिल सकता।

महानुभाव ! एक बहुत बड़ा सेठ शांति की खोज में दर-दर भटकता रहा घूमता रहा शांति नहीं मिली। एक दिन एक महात्मा जी के पास पहुँचा। महात्मा जी ने पूछा-कहो वत्स! कैसे आना हुआ? वह बोला-आप बहुत बड़े महात्मा हैं, बहुत बड़े सिद्ध पुरुष हैं मैं आपके पास शांति प्राप्ति की भावना से आया हूँ। महात्मा जी ने कहा-मैं शांति तुम्हें दे नहीं सकता, और तुम भी किसी को नहीं दे सकते। वह बोला नहीं महात्मा जी आपको देने की कोशिश तो करनी पड़ेगी। महात्मा जी ने कहा एक काम कर-वहाँ धूप में बैठ जा, और वे स्वयं जाकर छाया में बैठ गये, शाम हुयी, महात्मा जी ने पूछा-शांति मिली बोला नहीं। ठीक है, चलो कल देखते हैं।

दूसरे दिन महात्मा जी ने कहा-एक काम कर उस गड्ढे के पास जाकर बैठ जाओ जहाँ पशु बैठे हैं और महात्मा जी स्वयं एक वाटिका में जाकर बैठ गये, शाम को वह आया, बोला-महात्मा जी शांति नहीं मिली। ठीक है कल आना। वह आया, उसे एक कोने में बिठा दिया न कुछ खाने को दिया न पीने को। महात्मा जी स्वयं नाना-प्रकार के व्यंजन खाते रहे। शाम को आया, बोला महात्मा जी आपने तो मुझे भूखा ही मार दिया। चौथा दिन आया महात्मा जी ने कुछ भयंकर चित्रों के बीच उसे बैठा दिया। स्वयं महात्मा जी वीतरागी, सौम्य मुद्राओं के बीच जाकर बैठ गये। वह शाम को आया पुनः यही कहा शांति तो मिली नहीं। महात्मा जी ने कहा-मैंने तो तुम्हें शांति का उपाय बता दिया, वह बोला मुझे समझ नहीं आया।

वे बोले देख-मैंने पहले दिन कहा था-तुम धूप में बैठो, मैं छाया में जाकर बैठा। मेरे छाया में बैठने से तेरी धूप में कमी नहीं आयी, तू छाया में जब खड़ा होगा तभी छाया मिलेगी। दूसरे दिन मैंने तुझे बदबू वाले गड्ढे के पास बिठाया, मैं वाटिका में पुष्पों की गंध ले रहा था, मेरी सुगंधी तेरे गड्ढों में नहीं गयी। तीसरे दिन मैंने तुझे कुछ भी भोजन पानी नहीं दिया किन्तु मैंने नाना प्रकार के व्यंजन खाये, तेरा पेट मेरे भोजन करने से नहीं भरेगा। अगले दिन विद्रूप चित्रों के बीच तुझे रखा उससे तुझे डर लग रहा था, जबकि मैं आनंद में सराबोर था। अब भी तुझे समझ नहीं आया? तेरी शांति स्वयं तुझे ही मिलेगी।

वह पुनः बोला-महात्मा जी शांति कैसे मिलेगी मुझे रास्ता बताओ। वे बोले-रास्ता बाहर का होता तो मैं बता देता अंदर का रास्ता तो स्वयं खोजना पड़ता है। आध्यात्मिक पथ प्रत्येक व्यक्ति का स्वनिर्मित होता है, उसमें आम रास्ते की तरह साइन बोर्ड नहीं होते। हवाई मार्ग में कोई मील के पत्थर नहीं लगते आकाश में कौन लगायेगा साइन बोर्ड। ऐसे ही आध्यात्मिक क्षेत्र में कौन कितनी

उन्नति करता है, कौन कितनी गति करता है, वहाँ कौन मील के पत्थर लगा सकता है, अपना रास्ता स्वयं तैयार करो व उस पर स्वयं चलो तभी आप मंजिल तक पहुँच पाओगे।

वह सेठ नहीं माना, महात्मा जी कुछ तो रास्ता बताओ। वे बोले ठीक है, सामने एक झील है, उस झील में एक मगरमच्छ है। वह एक सिद्ध पुरुष है उसके पास जाकर के कहो, वह तुम्हें शांति दे देगा। वह सेठ मगरमच्छ के पास गया–उससे कहा–हे सिद्ध पुरुष ! मेरा प्रणाम स्वीकार करो, मैं शांति की भावना से तुम्हारे चरणों में आया हूँ। वह मगरमच्छ पानी में से ऊपर आया और उससे एक मनुष्य की आवाज में बोला बहुत अच्छा ! मैं तुम्हें शांति देता हूँ, उससे पहले एक काम करो, एक लोटा पानी मेरे लिये ले आओ मेरे प्राण प्यास के कारण कंठ में अटके हुये है, एक लोटा पानी मुझे दे दोगे तो कम से कम मेरे प्राण बच जायेंगे।

वह हँसता है, कहता है तू कैसा सिद्ध पुरुष है? पानी में डूबा हुआ है फिर भी कह रहा है प्राण कंठ में आ गये, गला सूख रहा है, पानी दे दीजिये। तो क्या ये पानी नहीं है? बोला हाँ पानी तो है ठंडा है, मीठा है, स्वादिष्ट है, आरोग्य वर्धक है। फिर क्या बात है ? बात ये ही है कि मैं बहुत प्यासा हूँ, एक लोटा पानी तुम ले लाओ फिर मैं तुम्हें शांति का उपाय बताऊँ। वह सेठ बोला–मुझे आपकी बात समझ नहीं आयी, जब आप पानी में डूबे है फिर आप पानी पी क्यों नहीं लेते। वह बोला–जब तेरे पास इतनी बुद्धि है तो मेरे पास क्यों आया ? तू स्वयं शांति का सागर है, अपने अंदर झाँककर शांति को क्यों नहीं प्राप्त कर लेता।

महानुभाव ! सत्यता ये ही है कि शांति प्रत्येक आत्मा का स्वभाव है, प्रत्येक आत्मा में शांति आदि गुण हैं हम उन्हें खोजें और प्राप्त करें तभी शांति मिलेगी। उस शांति के बाधकों को दूर करने का

प्रयास करें। मैं और चाहना ये उस शांति के बाधक हैं। भगवान की मूर्ति सामने रखी है, दोनों गेट बंद है तो वह मूर्ति दिखेगी नहीं। दोनों कपाट खोल दो सामने मूर्ति दिखाई दे जायेगी। बादाम की गिरि को ग्रहण करना चाहते हैं तो ऊपर का बक्कल तोड़ दो, अंदर का छिलका निकाल कर ही गिरि प्राप्त कर पायेंगे। ऐसे ही पहले अहंकार के भूत को उतारकर रखो, अहंकार से बचो और इच्छाओं को छोड़ दो बस तुम्हें स्वयमेव शांति मिल जायेगी। जब 'मैं' को साथ लेकर चलोगे तो ये मैं का भूत शांति से बैठने नहीं देगा और चाहना की डायन/सर्पिणी डसती रहेगी शांति से न बैठने देगी। इसलिये मेरा यही कहना है 'I Want Peace' I अर्थात् मैं, Want अर्थात् चाहना, इन दोनों से बच जाओगे इन्हें क्रॉस करके पहुँचोगे तो शांति ही शांति है। आप सभी लोग उत्तम शांति को, शाश्वत शांति को, स्वाभाविक शांति को प्राप्त करें, इन्हीं सद्भावनाओं के साथ।

।। ''श्री शांतिनाथ भगवान की जय'' ।।

४. ''हारिये मत हिम्मत''

महानुभाव ! जिन शासन में अपनी आत्मा के कल्याण के लिये दो बात कहीं। एक बात है पुरुषार्थ, दूसरी बात है भाग्य। जब समय अनुकूल होता है तब अल्प पुरुषार्थ के माध्यम से भी बहुत बड़ी सफलता प्राप्त हो जाती है, और समय जब प्रतिकूल होता है तब बहुत पुरुषार्थ करने पर भी सफलता मिल नहीं पाती। भाग्य के लिये भी हमें पुरुषार्थ करना पड़ता है किन्तु जब पुण्य उदय में नहीं आता तब तक पुरुषार्थ काम नहीं करता। जिस प्रकार वंश वृद्धि के लिये स्त्री-पुरुष दोनों का सहयोग अपेक्षित होता है, एक के माध्यम से कभी वंश की वृद्धि नहीं होती है, विद्युत उपकरण का संचालन कभी एक वायर से नहीं होता, दोनों वायर समान रूप से अपनी भूमिका अदा करते हैं किसी के भी महत्त्व को कम नहीं आँका जा सकता। नदी के दो तट स्वयं से तटस्थ हैं किन्तु उन दोनों के बिना नदी बह नहीं सकती, नदी दोनों के बीच से बहती है। यदि एक तट कहे कि मैं महत्त्वपूर्ण हूँ दूसरा कम तो किसी की महत्ता को न विशेष घटाया जा सकता है, न बढ़ाया।

ऐसे ही जिनशासन में भाग्य और पुरुषार्थ दो शब्दों का उल्लेख आता है। भाग्य की बात कहते हुये आचार्य भगवन् गुणभद्र स्वामी जी ने कहा-

पुरा गर्भादिन्द्रो मुकलितकरः किंकर इव,
स्वयं सृष्टासृष्टे यतिरथ निधिनां निजसुतः।
क्षुधित्वा षणमासान् सकिल पुरुरप्याट जगती,
अहो! केनाप्यस्मिन् विलसितमल्लंघ्यं हत विधेः॥

जो पूर्व के दस भवों से पुण्य का फल भोगते चले आ रहे हैं, तीर्थंकर प्रकृति जिनकी सत्ता में रखी है, सर्वार्थसिद्धि से चय कर

महाराज नाभिराय रानी मरुदेवी की कुक्षि में अवतरित हुये वे ऋषभदेव प्रभु, जिनका गर्भ, जन्म, दीक्षा कल्याणक सौधर्म इन्द्र ने सम्पन्न किया। जिन ऋषभदेव स्वामी की दो रानियाँ एक सौ एक पुत्र, दो पुत्रियाँ, प्रथम पुत्र चक्रवर्ती, द्वितीय पुत्र कामदेव वे आदि प्रभु उस तृतीय काल के सर्वोत्कृष्ट राजा, उस काल के आदि ब्रह्मा सृष्टि के कर्ता। किन्तु मुनि अवस्था में जिन्हें 1-2 दिन नहीं 13 महीने 8 दिन तक निराहार रहना पड़ा, तब ये कहना पड़ता है भाग्य भी वास्तव में बहुत बड़ी चीज है। भाग्य देखो कि कर्म का उदय आया तो उन्हें आहार नहीं मिला। वे आहार के लिये तो निकले किन्तु मिला नहीं। कोई पक्षी अपने घोंसले से बाहर न निकले उसे चुग्गा न मिले तो कहा जा सकता है पुरुषार्थ नहीं किया किंतु कोई पक्षी घोंसले के बाहर निकलकर के चुग्गा प्राप्त न करे तो यही कहना पड़ेगा कि आज इसके भाग्य में दाना-पानी था नहीं।

महानुभाव ! यदि भाग्य ज्यादा प्रबल हो जाये तो हो सकता है कोई व्यक्ति उसके प्रबल भाग्य के उदय से, उसके घोंसले में अनाज के चार दाने डाल दे किंतु फिर भी उस पक्षी को दानों को चुगने का पुरुषार्थ तो करना पड़ेगा अथवा पूर्व दिवस में संचय करके लाये हुये दाने उसके घोंसले में रखे हुये हैं वे पूर्वसंचित दाने आज उसके भाग्य से मिले किंतु उसे भी ग्रहण करने के लिये पुरुषार्थ करना पड़ेगा।

''कर्मण्येवाधिकारस्तु मा फलेषु कदाचन''

जो व्यक्ति कर्मशील होता है, वह व्यक्ति अपने सभी मनोरथों को पूर्ण करने में सफल होता है। जो व्यक्ति केवल भाग्य के भरोसे बैठा है, नदी के किनारे बैठकर मात्र लहरों को गिनता रहता है वह कभी नदी को पार नहीं कर पाता। नदी को पार करने के लिये मन में जुनून प्रकट करना पड़ता है, अंतरंग में संकल्प शक्ति जाग्रत करनी पड़ती है। संसार में असंभव कुछ भी नहीं है। Impossible शब्द स्वयं

में कहता है I am possible। यदि Impossible शब्द के प्रारंभ के दो शब्द अलग-अलग कर पढ़ें तो वह स्वयं कहता है मैं संभव हूँ, असंभव तो कुछ है ही नहीं। जो व्यक्ति असंभव के पार पहुँच गया उसके जीवन में अब असंभव कुछ रहा नहीं।''

अंधकार के बाहर अनंत प्रकाश है, दु:खों के पार जाने पर अनंत सुख है, अशांति के पार शांति ही शांति है, मृत्यु के पार जीवन ही जीवन है। इसी तरह से व्यक्ति पुरुषार्थ के बाहर चला जाये तो पुन: पुरुषार्थ का फल ही फल है। किन्तु जब तक वह पुरुषार्थ नहीं करता तब तक भाग्य का निर्माण नहीं होता। आज का पुरुषार्थ कल का भाग्य बन जाता है और कल जो पुरुषार्थ किया था वह आज का भाग्य है।

महानुभाव ! पुरुषार्थ तो सभी व्यक्ति करते हैं, सभी को करना भी चाहिये और करना भी चाहते हैं। संसार में तीन प्रकार के मनुष्य होते हैं। एक वे जो कार्यों में आने वाले विघ्नों को देखकर के, समझ करके, अंदाजा लगा कर के कार्य प्रारंभ ही नहीं करते। मैं नहीं कर सकता, उसकी उस धारणा को पुष्ट करने वाले व्यक्ति मिल जाते हैं कि तुम जैसे व्यक्ति क्या करेंगे। जिस हवा में बड़े-बड़े हाथी उड़ गये, पेड़ हिल गये तुम उस हवा का सामना करना चाहते हो? किन्तु जो व्यक्ति कहे, हाँ मैं सामना करूँगा, तितली कहे-भले ही हवा ने बड़े-बड़े पेड़ उखाड़े होंगे, हाथी उड़ाये होंगे इस घास पर बैठी मुझ तितली को हवा उड़ाकर बताये तो मैं समझ जाऊँगी हवा में शक्ति है। तो चैलेंज को वे लोग स्वीकार नहीं करते जो डरते हैं। चैलेंज तो वे स्वीकार करते हैं जिनमें कुछ करने की दमखम होती है।

महानुभाव ! जिसके मन में जुनून है उसके लिये संसार में कुछ भी असंभव नहीं है। एक बात कही जाती है कि अपने जीवन को हथेली पर रख लो, फिर संसार में जो चाहे सो कर लो अच्छे से

अच्छा कार्य, बुरे से बुरा कार्य। ये सोच लो कि जीवन में मृत्यु तो एक बार ही होती है जब भी मरूँगा एक बार मरूँगा दो बार नहीं किंतु जब मरूँगा, तो किसी योगी की मृत्यु मरूँगा किसी श्वान की मृत्यु नहीं मरूँगा। **''जीवन में हारना बुरा नहीं है बुरा है जीवन से हारना।''** व्यक्ति जीवन से हारते हैं, जो जीवन से हार गया उसे कौन उपलब्धि दे सकता है। जो जीवन में हारता है, वह जीवन में जीतता भी है जो नहीं जीतता है तो एक नयी बात अवश्य सीखता है। आप चुनौतियों को स्वीकार करते जाइये नि:संदेह आप विजय प्राप्त करेंगे, जीतेंगे, नहीं जीतेंगे तो नयी सीख सीखेंगे।

कुछ लोग कार्य प्रारंभ कर देते हैं, प्रारंभ में बहुत बड़ी-बड़ी डीग हाँकते हैं मैं ऐसा करूँगा वैसा करूँगा, बिल्ली की आवाज की तरह से। प्रारंभ में बिल्ली की आवाज का उच्चारण बहुत तीव्र होता है बाद में उसकी आवाज लुप्त सी हो जाती है। किंतु जो जीवन में बिल्ली की आवाज जैसे बनते हैं वे बिल्ली की ही तरह भाग जाते हैं श्वान को देखते ही, प्रतिकूलता को देखते ही। जीवन में बनना है तो धारा बनो। एक छोटी बूंद, दूसरी छोटी बूंद का सहयोग करती है। जीवन मुं योग करो या न करो किंतु एक दूसरे का सहयोग अवश्य करो। यदि आज आप सहयोग करोगे तो आपको भी सहयोग मिलेगा। जीवन में योगी बन पायें न बन पाये कोई बात नहीं किन्तु जीवन में उपयोगी अवश्य बन जाना। यदि तुम उपयोगी बन गये तो तुम्हारा जीवन पावन बन जायेगा।

किसी योगी का जीवन भी यदि स्वयं व दूसरों के लिये उपयोगी न रहा तो योगी का जीवन भी भोगी की तरह बदतर हो जाता है इसलिये जीवन में सहयोगी बनो व उपयोगी बनो। एक बूंद दूसरी बूंद का सहयोग करती है, सहयोग मांगती नहीं, वह तो जाकर चिपक जाती है पुन: बूंद-बूंद मिलकर धारा बन जाती है। वह धारा बहते-बहते जब खेत के बीच से निकलकर जाती है पुन: नाले का रूप ले लेती

है वह नाला बड़ा होता चला जाता है फिर वह अपना रास्ता स्वयं बनाता है। रास्ता बनाते-बनाते जब रूप बड़ा हो जाता है तो छोटे-छोटे नाले स्वयं उसमें आकर समर्पित हो जाते हैं और वह बूंद विशाल नदी का रूप ले लेती है वह नदी भी एक दिन सागर बन जाती है।

''समर्पण के साथ जब आगे बढ़ते हैं तो महानता प्राप्त होती है अकड़ के साथ जब बढ़ते हैं तब कहीं न कहीं पकड़ लिये जाते है।''

महानुभाव ! द्वितीय प्रकार के मनुष्य वे होते हैं जो कार्य को प्रारंभ तो कर देते हैं किन्तु मार्ग में आने वाली किसी भी प्रतिकूलता को देखकर भाग जाते हैं। तीसरे पुरुष वे होते हैं जो कार्य को प्रारंभ भी करते हैं, मध्य में आने वाली प्रतिकूलताओं से विघ्नों से डरते नहीं आगे बढ़ते चले जाते हैं और कार्य को सफल करते हैं। जो राह से घबराते नहीं मंजिल स्वयं आकर उनके चरण चूमती है। जीवन में जो व्यक्ति आलोचनाओं से नहीं घबराता वह उपलब्धियों को प्राप्त करता है। जिसने भी यहाँ उपलब्धि प्राप्त की है इस संसार ने उसकी आलोचना जरूर की है। ऐसा कभी नहीं हुआ उपलब्धि प्राप्त करने वाला शांति से बैठ गया हो किंतु हाँ वह शांति से बैठ जायेगा तो दुनिया शांति से नहीं बैठेगी। दुनिया उसे अशांत करने की कोशिश करेगी। उपलब्धि नहीं है तो वह भी अशांत हो जायेगा, दुनिया का बदला चुकायेगा, दुनिया को बदलने की कोशिश करेगा और जिसे प्राप्त हो गया वह कहेगा जिसे जो कहना है सो कहते रहो, जो मेरे पास है उसे तुम छीन नहीं सकते।

महानुभाव ! जीवन में कोई भी मुश्किल, मुश्किल नहीं है, मुश्किल तो ये है कि हम आसान को भी मुश्किल मान लेते हैं। और संसार में वे प्राणी भी हैं जिनके लिये मुश्किल स्वयं आसान बनकर के आ जाती है और आसान तो आसान है ही। यदि हम स्वयं कठोर बन जायें, जैसे पत्थर से पत्थर को तोड़ते हैं तब जो पत्थर कमजोर

होता है वही टूटता है जब तुम्हारा संघर्ष तुम्हारी प्रतिकूलता से होता है तुम्हारी और प्रतिकूलता की भिड़ंत होती है उसमें जो कमजोर होता है, यदि तुम कमजोर हो गये तो प्रतिकूलता तुम्हारे ऊपर हावी हो जायेगी और तुम्हें जिन्दगी भर गुलाम बनाकर रखेगी। अगर तुम मजबूत हुए तो तुम उसे जीवन भर अपनी दासी बनाकर रखोगे, वो तुम्हारे कहे में चलेगी जैसा कहोगे वैसा करेगी इसलिए तुम स्वयं में मजबूत बनो। वैसे पक्के तो तुम हो किन्तु तुम्हें डरा दिया गया है कि तुम ऐसा कर नहीं सकते।

जैसे कई बार व्यक्ति डरा देते है अरे ! व्रती बन रहा है व्रती, व्रती कैसे बनेगा, तू नहीं कर सकता, साधु बनने जा रहा है तू नहीं बन सकता, त्याग कर रहा है तू नहीं कर सकता, ऐसा काम तू नहीं कर सकता, उसके मन में संस्कार तो पहले डाल दिये कि तेरे लिए यह सब असंभव है। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी की माँ मदालसा की तरह से यदि लोरी गाई जाती अरे कुछ भी असंभव नहीं है "शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरञ्जनोऽसि, संसार माया परिवर्जतोऽसि" ये लोरियाँ गाई जाती हैं, सुनाई जाती हैं तू तो शुद्ध है बुद्ध है निरंजन है अविकारी है नित्य है तू कहाँ फँस गया इसमें। तू तो वह है यह तू नहीं है, जो संस्कार बचपन से दिये जाते हैं यावज्जीवन रहते है।

गर्भ से संस्कार दिया गया है तो समाधि के उपरान्त भी वह काम करता है, जन्म से दिया गया संस्कार मृत्यु के अन्तिम क्षण तक भी काम करता है। जन्म के जितने बाद से संस्कार दिये गये हैं, मृत्यु के उतने पहले तक काम कर सकते हैं और मध्य जीवन में दिया गया संस्कार केवल जवानी के जोश तक काम करते हैं होश आने पर छूट जायेगा इसीलिए संस्कार बचपन से काम करता है। किसी बीज को वपन करने के उपरान्त यदि बचपन में उसको पानी दे दिया खाद दे दी, हवा दे दी, प्रकाश नहीं मिला तो अंकुर मुरझा जायेगा बाद में वह

मरा सा पौधा पैदा तो हो जायेगा किंतु बाद में उसे कितना ही पानी दो, हवा लगाओ, धूप लगे फिर तुम सोचो उसमें बड़े-बड़े फल लग जायें, तो वह संभव नहीं।

महानुभाव ! नेपोलियन बोनापार्ट जो साहस का पुतला था, रोम-रोम में साहस भरा था, युद्ध में कभी हारा नहीं। वह कभी शेर से भी नहीं डरता था, निहत्था होकर शेर के पास जाकर उसकी गर्दन को पकड़ लेता था, उस नेपोलियन बोनापार्ट की मृत्यु पता है कैसे हुयी ? वह एक बार जंगल में गया, वहाँ एक बिलाव आया, उसे देखकर डरकर उसके प्राण निकल गये क्योंकि बचपन में जब वह पालने में झूल रहा था, माँ ने बिलाव को देखा और चिल्लायी, अरे! ये मार देगा, खा लेगा। जिसकी आवाज सुनकर वह डर गया, ये संस्कार उस नेपोलियन बोनापार्ट के जहन में बस गया और बिलाव देखकर मर गया।

जिसकी आत्मा में ऐसे संस्कार पड़ गये कि ये बहुत मुश्किल है, कठिन है तो वह डर ही जाता है। बचपन में बच्चों को किसी गलत कार्य से बचाने के लिये डराया जाता है, कह देते हैं 'हऊआ आ जायेगा'। अरे ! हऊआ है क्या चीज, वह हऊआ एक भय है। बच्चे को भय दिला दिया, भय दिलाना है तो ये कहो-इससे पाप लगेगा, इससे तुम्हारी शक्ति नष्ट होगी। अरे! तुम्हें डरना नहीं हिम्मत से कार्य करोगे तो तुम्हारी वृद्धि, विकास होगा निर्भीक बनो। सीमा पर खड़े सैनिक से कहो कि हऊआ आ जायेगा तो वह कहेगा-कहाँ का हऊआ-कैसा हऊआ मैं ही सबसे बड़ा हऊआ हूँ। वह सैनिक डरने वाला नहीं है क्योंकि उस प्रकार का जोश उसमें भर दिया जाता है।

जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिये जोश बहुत जरूरी है। काम केवल होश से नहीं होता, काम केवल धन के कोष से नहीं होता, काम शब्दों के शब्द कोश से भी नहीं होता, काम जब भी होता

है जीवन के जीवंत होश से होता है, जीवंत जोश से होता है। होश के साथ जोश होना बहुत जरूरी है, यदि केवल होश है तो सिर्फ चलता चला जा रहा है चींटी की चाल, कब पहुँचेगा कह नहीं सकते गिर गया फिर उठने की सामर्थ्य भी न बचेगी। साथ में जोश होगा तो हजार बार गिरकर भी उठ जायेगा मंजिल तक पहुँच जायेगा।

यूँ ही नहीं मिलती, राही को मंजिल,
एक जुनून सा दिल में जगाना पड़ता है।
मैंने पूछा चिड़िया से-कैसे बना आशियाना तेरा,
बोली-भरनी पड़ती है उड़ान बार-बार,
तिनका-तिनका उठाना पड़ता है।

महानुभाव ! किसी का आशियाना ऐसे ही नहीं बन जाता। नसीब से या भाग्य से बन गया, तो नसीब सिर्फ इतना समझ लो कि जब तिनका-तिनका जोड़ा तब हवा नहीं चली नहीं तो बना ही न पाते। उसे भाग्य समझ लो किन्तु पुरुषार्थ करके एक-एक तिनका जोड़ा तब उसका आशियाना बन पाया। पुरुषार्थ तो करना ही पड़ता है।

उद्यमेन हि सिद्धयन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य, प्रविशंति मुखे मृगाः।।

उद्यम के माध्यम से सभी मनोरथों को पूर्ण किया जाता है, किंतु केवल चाहने मात्र से किसी भी अभिलाषा की पूर्ति नहीं हो सकती। इसके लिये तो पसीना बहाना पड़ता है। जो पसीना बहाता है, वही अमृत पीना जानता है। ये अमृत पीने की शर्त है कि बिना पसीना बहाये अमृत नहीं मिलता। यदि कोई बिना पसीना बहाये अमृत भी पीता है तो वह जहर बन जाता है, इसलिये जीवन में एक जुनून पैदा करो, शक्ति पैदा करो और ध्यान रखो काम करने के लिये जितनी

आवश्यकता साधनों की है, उससे ज्यादा आवश्यकता है अंतरंग की शक्ति व साहस की। अन्यथा साधन तो संसार में सभी के पास है किंतु एक साधन विहीन व्यक्ति भी अपनी मंजिल को प्राप्त कर लेता है, सफलता को प्राप्त कर लेता है, एक अधना (छोटा) सा व्यक्ति भी बहुत ऊँचाई तक पहुँच जाता है।

वह अरुणिमा जिसके पैर नहीं एक पैर में रॉड पड़ी है, दूसरा पैर नकली है वह भी ऐवरेस्ट की चोटी चढ़ सकती है, वह सुधाचन्द्रन जिसके कृत्रिम पैर हैं वह भी महान नृत्यांगना बन सकती है, बिल्मा रूडोल्फ के बारे में तो आपने सुना ही है, बचपन में ज्वर से पीड़ित होकर के पोलियों हो गया, दोनों पैरों की शक्ति क्षीण हो गयी। डॉक्टर ने कहा कि जीवन में कभी तुम बेसहारा चल पाओगी तुम ऐसी कल्पना भी न करना, तुम्हें बैसाखी के सहारे चलना पड़ेगा। यह सुनकर उसकी आँखों में आँसू आ गये। उसने अपनी माँ से अपने मन की बात कही कि मैं एक अच्छी धाविक बनना चाहती हूँ। माँ ने कहा बेटा ! तुम बिना बैसाखी के चल भी नहीं सकती, रनर कैसे बनोगी? वह बोली माँ-यह पैर, ये शरीर साथ दे या न दे किन्तु मेरी आत्मा की आवाज है, मैंने मन में ठान लिया है व्यक्ति ठान ले तो पर्वत को भी पानी-पानी कर सकता है। माँ बोली बेटा यदि ठान लिया तो अवश्य बनोगी। पुनः वह अपनी हिम्मत व कोशिशों के साथ आगे बढ़ती है और एक दिन ओलंपिक में लगातार तीन दौड़ों में 100 मी. 200 मी. 300 मी. की दौड़ों में तीन स्वर्ण पदकों के साथ विजयी हुयी।

महानुभाव ! जीवन में असंभव कुछ भी नहीं है। जब व्यक्ति किसी भी कार्य को करने का संकल्प ले लेता है, संकल्प साथ लेकर चलता है तब संसार की सभी शक्तियाँ उसका साथ देती हैं।

''संकल्प यदि कदम-कदम पर साथ है,
पेट करोड़ों फिर भी भरने, उससे दूने हाथ हैं''।

व्यक्ति के पास जितने पेट हैं उससे दूने हाथ हैं। अर्थात् पुरुषार्थी व्यक्ति दो हाथों से केवल एक पेट नहीं करोड़ों पेट भी भर सकता है। एक चींटी अपनी संकल्प शक्ति के माध्यम से, आपको सुनकर आश्चर्य होगा कि वह अपने वजन से 3 हजार गुना वजन उठा सकती है। कोई उस की शक्ति को चुनौती नहीं दे सकता। एकलव्य के लिये यदि गुरु द्रोणाचार्य ने पढ़ाने से मना कर दिया तो क्या वह एकलव्य शस्त्र विद्या में अनपढ़ रह गया? या नहीं सीख पाया ? उसने संकल्प के साथ अपने मन में गुरु को स्थापित करके उनकी मूर्ति बनाकर वह धनुर्विद्या सीख ली।

हारिये न हिम्मत, बिसारिये न राम,
संकल्प के साथ निरंतर, करते रहिये काम।

संकल्प के साथ अपने प्रभु आराध्य को स्थापित करके जो हिम्मत को नहीं हारता तो वह हर कार्य में सफलता प्राप्त करता है। वह एकलव्य जिसने गुरु की उपेक्षा नहीं की, गुरु ने शिष्य की उपेक्षा कर दी तो कोई बात नहीं, किंतु शिष्य ने गुरु की उपेक्षा नहीं की, क्योंकि शिष्य लेना चाहता है। एकलव्य ने विद्या ग्रहण की और यही कहा सब कुछ उन्हीं के चरणों का प्रसाद है मेरे गुरु मुझे साक्षात् दे रहे हैं। चाहे वे देने से इन्कार भी कर दें किन्तु लेने वाले ने सौगंध खा ली है, संकल्प लिया है कि मैं लेकर ही रहूँगा तो भगवान को भी देना पड़ता है। अभिमन्यु चक्रव्यूह में फँस कर हार गया किन्तु हारा तो हिम्मत के साथ हारा, उसकी हार भी महोत्सव मनाने से ज्यादा थी। उसकी हार पर अफसोस नहीं, संतुष्टि होती है। यदि जीवन में हारना है तो, ऐसे हारो कि तुम्हारी हार भी किसी के लिये आदर्श बन जाये। मंजिल थक जायेगी, राह थक जायेगी, स्वयं आपके पास आ जायेगी, राही को कभी थकना नहीं चाहिये।

महानुभाव ! किसी भी पुरुष का उदाहरण देखो जो संकल्प के साथ आगे बढ़ा हो तब नि: संदेह उसने सफलता प्राप्त की ही की है। एक कविता आती है-

लहरों से डरकर नौका पार नहीं होती,
कोशिश करने वालों की कभी हार नहीं होती।

नन्हीं चींटी जब दाना लेकर चलती है,
चढ़ती दीवारों पर सौ बार फिसलती है,
मन का विश्वास रग-रग में साहस भरता है
गिरकर चढ़ना चढ़कर गिरना कभी नहीं अखरता है
आखिर उसकी मेहनत बेकार नहीं होती।
कोशिश करने.....॥

गोताखोर समुद्र में गोता खूब लगाते हैं,
जा-जाकर खाली हाथ लौटकर आते हैं।
मिलते सहज न मोती गहरे पानी में
बढ़ता दुगना विश्वास उसी हैरानी में
मुट्ठी उनकी खाली हर बार नहीं होती
कोशिश करने......॥

असफलता एक चुनौती है, स्वीकार करो,
कहाँ कमी रह गयी, देखो और सुधार करो
संघर्षों का मैदान छोड़ मत भागो तुम
जब तक मिले न सफलता, नींद चैन की त्यागो तुम
कुछ किये बिना जीवन में जय-जयकार नहीं होती
कोशिश करने वालों की कभी हार नहीं होती॥

महानुभाव ! यदि चींटी कोशिश करती है तो पहाड़ कितना भी ऊँचा हो जाये, मनुष्य पहाड़ की ऊँचाई को देखकर थक जायेगा,

उत्साह पस्त हो सकता है किंतु चींटी कहती है मुझे ज्यादा देखना ही नहीं अपना काम करना है। वही चींटी पहाड़ की चोटी पर चढ़ जाती है। हाथी नहीं चढ़ सकता, वह अपने शरीर को देखता है, मैं इतना बड़ा, अहंकार आ जाता है। चींटी तो बस एक संकल्प के साथ चढ़ना है-चढ़ना है और चढ़ना है।

मकड़ी अपना जाल बनाती है, तो क्या एक बार में बन जाता है? नहीं वह जाला बाहर से नहीं लाती, मुँह में से लार निकालती जाती है बनाती जाती है, कल्पना करो अधर आकाश में जाला बनाने का कार्य करती है। वह जाला बनाने में उसने कई बार प्रयास किया होगा, तब वह बना होगा।

एक-एक बूंद कोरे मटके में आती है तब दो-चार बूंद तो दिखाई भी नहीं देती। नव घट में गयी बूंदें दिखायी नहीं देती, क्या वह नव घट प्रत्येक बूंदों को सोख लेता है? नहीं। वह बूंद निरन्तर गिरती रहेगी-गिरती रहेगी तो कलश भर ही जायेगा। एक-एक बूंद निरंतर यदि पत्थर पर गिरती रहे, वह बूंद यदि संकल्प कर ले तो पत्थर में भी छेद कर सकती है। रस्सी में जुनून पैदा हो जाये कि इस पत्थर को काटना है, तो रस्सी से भी पत्थर को काटा जा सकता है।

महानुभाव ! हिम्मत न हारो। गुच्छे की चाबी आपके हाथ में है, एक-दो से ताला नहीं खुला 10, 50, 100 चाबियों से नहीं खुला 99 लाख 99 हजार 999 चाबियों से भी नहीं खुला एक करोड़ चाबियों में से अंतिम चाबी रह गयी तब भी हिम्मत न हारो, उस आखिरी चाबी से भी ताला खुल सकता है। यदि हिम्मत हार गए तो 99 लाख, 99 हजार 999 कोशिशें नाकामयाब रह जायेंगी। बारिश के समय में माचिस सील जाती है। वह व्यक्ति हर तिली को जलाने की कोशिश करता है अपने दीप को प्रज्ज्वलित करने के लिये, सभी तिल्ली खराब होती चली जा रही हैं माचिस की डिब्बी की आखिरी तिल्ली

बची है अभी भी घबराने की आवश्यकता नहीं है उस एक तिली में इतनी दम है कि वह एक नहीं विश्व के सभी दीपकों को जला सकती है।

यदि अंतिम श्वाँस भी तुम्हारे पास बची है, अंतिम अंतर्मुहूर्त भी बचा है उसमें भी व्यक्ति अपनी समाधि करके स्वर्गादि अवस्था को प्राप्त कर सकता है। अरे हजार हाथ की पूरी रस्सी कुयें में चली जाये जाने दो, बाल्टी चली जाये जाने दो, किन्तु घाट पर अभी रस्सी का अंतिम छोर पड़ा है उसे ही पकड़ लो, यदि पकड़ में आ गया तो पूरी रस्सी तुम्हारी है। अंतिम बाजी जीत कर भी व्यक्ति जीता हुआ माना जाता है। सभी पराजय फिर विजय में बदल जाती है इसलिये जीवन में कभी हारना न सीखो। जीवन के अंतिम क्षण में साधना करके अनेक मुनिराज स्वर्ग में गये। कोई मुनिराज उपशम श्रेणी चढ़े-गिरे, अब उनके पास जीवन का अंतिम अंतर्मुहूर्त रह गया है यदि क्षपक श्रेणी नहीं माँड़ी तो सर्वार्थसिद्धि आदि में अटक कर रह जायेंगे, किन्तु अंतिम अंतर्मुहूर्त में क्षपक श्रेणी माँड़ना प्रारंभ किया, उस ही अंतर्मुहूर्त में अत:कृत केवली हो गये, मोक्ष चले गये। ये न सोचो समय कम रह गया है, समय कभी भी कम नहीं होता।

लोग कहते हैं जिंदगी बहुत छोटी है किंतु उनके लिये जिनकी ख्वाहिशें बहुत लम्बी-लम्बी हैं। ऐसी ख्वाहिशें जो कभी पूरी नहीं हो सकती। जो दो अंकों में 100 करना चाहते हैं ऐसी ख्वाहिश, जो चाहते हैं सर्दी भी पड़े धूप भी तेज पड़े, मैं भीगूँ नहीं बारिश में खड़ा हो जाऊँ ऐसी विपरीत ख्वाहिशें जिनकी पूर्ति होना असंभव है, वे ही कहते हैं जिंदगी बहुत छोटी है।

महानुभाव ! जीवन का दुरुपयोग नहीं करना है, जीवन का सदुपयोग करना है। ये जीवन बड़ा प्रमाणिक है जैसे एक-एक धागे का कोई उपयोग नहीं किन्तु उन्हीं एक-एक धागे से कपड़ा बन जाता

है, प्रयासरत् रहो। एक-एक तिनके का महत्त्व नहीं किंतु उन्हें जोड़कर ही एक मजबूत रस्सा बन जाता है। एक-एक छोटे-छोटे नियमों का कोई उपयोग नहीं किंतु वे छोटे-छोटे नियम ही परमात्मा तक पहुँचाने में समर्थ हो जाते हैं। राजमार्ग से चलने वाले कई बार दुर्घटना के शिकार हो जाते हैं पगडंडी पर चलने वाले मंजिल तक पहुँच जाते हैं। ऐसा नहीं हर पगडंडी भटकाने वाली हो, पगडंडियाँ राजमार्ग तक भी ले जाती हैं और कई बार मंजिल तक भी ले जाती हैं किन्तु चलने का हौंसला आपका स्वयं का होना चाहिये। इतना हौंसला बुलंद होना चाहिये कि सामने वाला व्यक्ति तुमसे आकर स्वयं पूछे-

खुदी को करो बुलंद इतना,
खुदा तुमसे खुद पूछे बता तेरी रजा क्या है।

कई बार अध्यापक विद्यार्थी से स्वयं पूछता है, तुमने बहुत अच्छा पेपर किया है, बताओ तुम्हें कितने नंबर चाहिये। वह कहता है आप मेरी गलतियों के अनुरूप नंबर काट कर जितने कम कर सकते हो कर लो मुझे जो प्राप्त होना है सो हो जायेगा। अध्यापक भी सोचता है गुंजाइश ही नहीं है कहाँ से नंबर काटूँ और 100 में से 100 नंबर दे देता है। महानुभाव ! अपने अंदर योग्यता है तो मंजिल हमसे दूर नहीं। योग्यता नहीं है, व्यक्ति सोचे भाग्य से सब कुछ मिल जायेगा तो ऐसा नहीं है, भाग्य से नहीं मिलेगा, हमें बनाना पड़ेगा। भाग्य की लकीरें हाथों में होती हैं। कहते हैं-

''हाथों में लिखी होती हैं भाग्य की लकीरें, बिना भाग्य के किसी को कुछ नहीं मिलता।'' हम उनसे कहना चाहते हैं-मिलता तो उन्हें भी है जिनकी न लकीरें होती है, न हाथ होते हैं वे भी सब कुछ प्राप्त कर लेते हैं।

'निक्म्यूजिकिक' का नाम आपने सुना होगा जिसके दोनों हाथ नहीं हैं दोनों पैर नहीं हैं, जांघ के पास एक अंगूठा व अंगुली लगी

हुयी है। वह व्यक्ति सभी कार्य कर लेता है, तैर भी लेता है, लेपटॉप भी चला लेता है, साथ-साथ वह पायलेट भी है। वह इतना दिमाग वाला व्यक्ति है जिससे सलाह लेने के लिये लोगों को लाइन में लगना पड़ता है, अपॉइंटमेन्ट लेना पड़ता है।

महानुभाव ! जीवन में असंभव कुछ भी नहीं है जीवन के अंतिम क्षण तक सफलतायें प्राप्त हो ही जाती हैं। इब्राहिम लिंकन नें कितनी कोशिशें की और आखिरकार अमेरिका के राष्ट्रपति बने। कालयवन जरासंध का पुत्र व अपराजित जरासंध का भाई, शौर्यपुर के महाराज समुद्रविजय के पुत्र नेमिनाथ, वासुदेव के पुत्र श्री कृष्ण के साथ युद्ध करने आया 347 बार कालयवन को उन्होंने हराया अपराजित तो मृत्यु को प्राप्त हो गया किन्तु उसने हिम्मत नहीं हारी, पूरी सेना लेकर आया और 348 वीं बार में शौरीपुर से छोड़कर कृष्णादि को द्वारिका आना पड़ा।

व्यक्ति जब सोच ले तो कर ही लेता है। रावण जैसा बलशाली उस समय कोई नहीं था किन्तु राम की संकल्प शक्ति कि मुझे सीता को प्राप्त करना है, मन में यही बात थी मैं अपनी सीता दे नहीं सकता इस कारण युद्ध हुआ और सीता की प्राप्ति हुयी। एक छोटी सी तितली जब कोकून में होती है तो उसमें से निकलने के लिये संघर्ष करती है। एक विद्यालय की प्रयोगशाला में 40 कोकून मंगाये, विद्यार्थियों को सिखाने के लिये कि तितलियाँ कैसे संघर्ष करती हैं। वे स्वयं संघर्ष करती हैं तभी उड़ पाती हैं। वे तितलियाँ कोकून से निकलने का संघर्ष कर रही थीं, लग रहा था कहीं मर न जायें।

अध्यापक व विद्यार्थी सब भोजन पानी करने चले गये, तभी एक विद्यार्थी वहाँ रुका, उसे तितली पर दया आ गयी और उसने कोकून को खोल दिया। तितली उसमें से निकली थोड़ा-सा उड़ी गिर पड़ी मृत्यु को प्राप्त हो गयी। जब सभी प्रयोगशाला में आये,

पूछा-किसने इस तितली को मारा कोई कुछ नहीं बोला पुनः पूछा इस तितली को किसने बचाया-तो वह विद्यार्थी बोला मैंने बचाने की कोशिश की, ये तड़प रही थी मुझसे देखा नहीं जा रहा था। वे बोले-तुमने इसे बचाया नहीं मार दिया। देखो ये 39 तितलियाँ यहाँ उड़ रही हैं उन्होंने संघर्ष किया वे स्वयं कोकून तोड़कर आयीं, सब उड़ रही हैं, कोई मरी नहीं किंतु तुमने जिसको संघर्ष नहीं करने दिया वह मर गयी।

जो संघर्ष नहीं करता है वह वास्तव में मर जाता है। जो डर गया सो मर गया। जो संघर्ष की अग्नि में जलता है वह शुद्ध कुंदन बन जाता है। सोने को तो अग्नि में तपाना ही पड़ता है उसे बर्फ के पानी में धोकर शुद्ध नहीं किया जाता। यदि हम और आप स्वयं को सोना मानते हैं तो किसी भी प्रतियोगिता से डरे नहीं। यदि तैयार हो गये तो वह अग्नि हमें निखार देगी, हमारी जिंदगी को सँवार देगी, हमें एक ऐसा आधार देगी जिस आधार को प्राप्त कर हम दूसरों को भी आधार दे सकेंगे।

आज का विषय-हिम्मत मत हारिये, राम को न बिसारिये अपने प्रभु आराध्य को कभी मत भूलो, यदि राम को भूल गये तो अपनी उपलब्धि पर अहंकार आ जायेगा, वह आपको पतित कर देगा। इसलिये दोनों को साथ में लेकर चलना है।

आपको यही आशीर्वाद देता हूँ कि आप सभी अपने जीवन में हिम्मत से काम लें, अपने जीवन को संभाल लो। किसी साथी का इंतजार न करो, इस सफर में कोई भी हमसफर सच्चा नहीं होता, सभी साथी छूट जाने वाले हैं। मंजिल पर तुम अकेले ही पहुँचोगे कोई दूसरा नहीं पहुँचेगा।

हर शाम सूरज से विदा लेती है,
हर रात अंधेरे में बितानी पड़ती है

हर सुबह फूलों का साथ रहता है,
हर रात काँटों में बितानी पड़ती है।
बात क्या कहूँ मैं साहिल और कश्ती की,
प्रीति तो लहरों से निभानी पड़ती है।।
इस बेवफा दुनियाँ में हर हमसफर की बात झूठी है,
यहाँ तो अपनी अर्थी भी स्वयं अपने को उठानी पड़ती है।

जब तक स्वयं न मरोगे तब तक स्वर्ग नहीं मिलेगा, जब तक स्वयं काम न करोगे तब तक सफलता न मिलेगी। सफलता तुम्हारा इंतजार कर रही है बहुत देर से, तुम सफलता का इंतजार मत करो आगे बढ़ो। क्योंकि सफलता यहाँ चलकर नहीं आयेगी, तुम्हें ही सफलता के पास चलकर जाना पड़ेगा। यहाँ इंतजार करते-करते अनंत भव भी निकल जायेंगे किंतु सफलता प्राप्त न होगी। वहाँ चले जाओ जहाँ कोई तुम्हारी इंतजारी कर रहा है, वहाँ तुम्हें अपने पैरों से चलकर जाना पड़ेगा, दूसरे के पैर वहाँ काम नहीं दे सकते। इन्हीं सद्भावनाओं के साथ कि आप अपने जीवन में हिम्मत जगाइये, साहस पैदा कीजिये और लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये आगे बढ़ जाईये।

हिम्मत के साथ एक पत्थर तो उठा लो सच मानिये आकाश में भी छेद कर सकते हैं आप। आप कमजोर नहीं हैं। संसार की प्रत्येक आत्मा परमात्मा बन सकती है आप सभी अपनी शक्ति का सदुपयोग करें, शक्ति को जाग्रत करें, विस्मृत शक्तियों को पुनः बटोर लें और लक्ष्य तक पहुँचने में सफल हों।

।। "श्री शांतिनाथ भगवान की जय" ।।

५. ''मानवता के मायने''

महानुभाव ! बुद्धिमान व्यक्ति वे कहलाते हैं जो ''सार को ग्रहण करते हैं। कबीर जी ने लिखा

''साधु ऐसा चाहिये जैसा सूप सुभाय।
सार-सार को गहे रहें थोथा देय उड़ाय।

साधु अर्थात् सज्जन पुरुष, भले आदमी, चोखे व्यक्ति। चोखा व्यक्ति वही है जो ज्ञान और बुद्धि के फल को प्राप्त कर चुका हो। शास्त्रीय भाषा में कहें तो ज्ञान का फल है संयम, चारित्र ''सम्यग्ज्ञानं क्रिया सहितं'' जो संसार की संतति के छेद का कारण होती है।

जीवन में भला आदमी बनना लाभ का काम है। लाभ प्राप्त करना भले ही लाभ का कारण बने या न बने। लाभ भी कई बार हानिकारक होता है और भला बन जाना भला तो है ही, बनकर देखो तो लाभ ही लाभ है। आज का व्यक्ति फायदे की बात सोचता है। ''कायदे और वायदे को निभाये बिना किसी को फायदा नहीं होता।'' इसलिये कायदा अर्थात् कानून को, नियम को, संहिता को जिसने छोड़ दिया और वायदे को अर्थात् अपनी मर्यादा का, धर्म का, अपने कर्त्तव्य व संकल्प का जिसने उल्लंघन किया है ऐसे व्यक्ति का कभी फायदा नहीं होता, वह हानि से भी ज्यादा खतरनाक हो सकता है। कई बार हानि अच्छी होती है और लाभ बुरा, कई बार हार अच्छी होती है जीत बुरी।

फूलों के सामने अर्थात् फूल वाले की दुकान पर आप हार माँगते हैं। दुनियाँ में सब जगह आप जीत-जीत चाहेंगे किन्तु आप प्रभु के चरणों में तो हृदय की श्रद्धा का हार ही समर्पित करते हैं तब जीत को प्राप्त कर पाते हैं। ''जो हार को हार स्वीकार कर लेता है वह जीत को प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है।'' जिसने जीवन में अपनी

हार को हार नहीं माना, हारते हुये भी हार नहीं मानता वह कभी जीत के दर्शन नहीं कर पाता। एक बार हार को हार स्वीकार कर लेगा तो जीतने का पुरुषार्थ करेगा, उसका हौसला बढ़ता चला जायेगा। जहाँ कायदे का ध्यान रखा जाता है, वायदा कभी भूला नहीं जाता वहाँ पर निरन्तर फायदा ही फायदा होता चला जाता है।

संसार में सारभूत वैराग्य है, ऐसा आचार्य सकलकीर्ति जी महाराज ने लिखा किन्तु जो वैराग्य का कारण है वह भी सारभूत है, वैराग्य का फल भी सारभूत है वैराग्य का फल सर्वज्ञता, वीतरागता, चेतना के अनंतगुणों की प्राप्ति, परमात्म दशा की प्राप्ति ये सब भी सारभूत है और वैराग्य से युक्त आचार्य-उपाध्याय-साधु की अवस्था वह भी सारभूत है। वैराग्य का कारण सम्यक् श्रद्धा, सम्यग्ज्ञान, सदाचार ये भी सारभूत है। वैराग्य का कारण मैत्रीभाव, दया, वात्सल्य, करुणा, उपकार इत्यादि भी कारण होने से सारभूत हैं। तो सारभूत तो बहुत कुछ है। कथन करने की अपेक्षा सबकी अलग-अलग होती है। आ. सकलकीर्ति जी महाराज की कथन करने की जो अपेक्षा है वह आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी जी की भावना को समझते हुये कहा कि यदि तुम कर्मों से मुक्त होना चाहते हो तो-

''वैराग्य सारं भज सर्व कालं''

वैराग्य सारभूत है किंतु कुंद-कुंद स्वामी से पूछो तो वे कहते हैं संयम भी सार है, तप भी सारभूत है। संयम का हथौड़ा लेकर तप की चोट देने पर कर्मों की लड़ियाँ टूटती हैं अकेले वैराग्य से नहीं टूटतीं, किन्तु आचार्य सकलकीर्ति जी महाराज की वैराग्य की परिभाषा बहुत विशद है, गहरी है वे कहते हैं जहाँ पर वैराग्य उच्चकोटि पर पहुँच जाता है वहाँ वैराग्य के साथ संयम तप-ध्यान आ जाते हैं। जब तक वैराग्य में कच्चापन होता है तब तक वे नहीं आते। किसी फल में यदि कच्चापन है तब तक गंध भी खट्टी होगी, रंग भी नहीं बदलेगा।

ज्यों ही फल पक जाता है तो उसका हरा रंग चला जाता है, खटास चली जाती है मिठास आ जाती है, खटास के साथ रहने वाली गंध भी चली जाती है, मिठास के साथ रहने वाली गंध आ जाती है, कठोरपन भी चला जाता है। ऐसे ही वैराग्य परिपक्व होता है किन्तु वैराग्य को पकाने के लिये समय अपेक्षित है जल्दबाजी में नहीं पकता।

भरत चक्रवर्ती ने दीर्घकाल तक वैराग्य को पकाया तब वैराग्य का फल प्राप्त करने में देरी नहीं लगी। बाहुबली ने वैराग्य को धारण तो कर लिया, दीक्षा भी ले ली किंतु वैराग्य पकने में थोड़ी सी देरी लगी क्योंकि वैराग्य जब पकता है तब सभी विकल्पों को नष्ट कर देता है और जब तक कच्चा रहता है तो विकल्प बार-बार आते रहते हैं। उनके मन में विकल्प चलते रहे इसका आशय है उनका वैराग्य पकने में देरी लगी, धीमे-धीमे पकाया।

पकाने में ताप चाहिये। पकना ताप में ही होता है खेत में यदि बारिश होती रहे धूप न पड़े तो दाने न पकें। बाहुबली ने ताप दिया एक साल खड़े होकर तपस्या की तब फल प्राप्त किया।

''जीवन बहुत छोटा है, उनके लिये जो जीवन में सार्थक कार्य नहीं करना चाहते। जीवन बहुत बड़ा है उनके लिये जो जीवन में सिर्फ सार्थक कार्य ही करना चाहते हैं व्यर्थ का कार्य नहीं करना चाहते।''

व्यर्थ का कार्य सार्थक कार्य के लिये आधार हो सकता है, जैसे द्रव्य रखने के लिये पात्र आधार है ऐसे ही व्यर्थ के कार्य आप करते हैं, करने पड़ते हैं, जैसे अनाज का दाना होता है खेत में बोने से सीधे-सीधे अनाज का दाना पैदा नहीं होता, उसके साथ भूसे को भी झेलना पड़ता है वह भी साथ में आता है। कोई भी गाय या भैंस सीधे-सीधे

घी नहीं देती दूध देती है, दूध में घी होता है पुरुषार्थ करने पर घी निकाल दिया जाता है, छाछ अलग कर दी जाती है।

यह सार्थक मनुष्य अवस्था प्राप्त की है तो सार्थक के साथ कुछ व्यर्थ के कार्य भी चल रहे हैं किन्तु व्यर्थ के कार्यों में सार्थकता है तब तो जीवन सार्थक है और केवल व्यर्थ-व्यर्थ के ही कार्य चल रहे हैं तो वह शून्यवत् है। फलों में रस है तो छोटे-छोटे फल भी काम के हैं अन्यथा बड़े फल भी बेकार हैं। किसी किसान के खेत में लम्बे-लम्बे गन्ने खड़े हैं किन्तु पेलने से 1 गिलास भी जूस नहीं निकला और किसी किसान के खेत में अनार के पेड़ हैं दो अनार तोड़कर जूस निकाला तो एक लोटा जूस निकल आया। तो सार जिसमें ज्यादा है वही सार्थक है ऐसे ही हमारा जीवन सार से युक्त हो, असार थोड़ा बहुत रहे चलेगा किन्तु अधिक सार होना चाहिये, सार नहीं तो जीवन व्यर्थ है।

महानुभाव ! हम अपने जीवन को सारभूत कैसे बनायें, कैसे जीवन को सार्थक करें ? हम कौन हैं? हम सब मनुष्य हैं, मनुष्य जाति के प्राणी हैं और मानवजाति का प्राणी पशुवत् भी हो सकता है, देववत् भी हो सकता है, नारकी जैसा भी हो सकता और मनुष्य जैसा भी हो सकता है, इस मनुष्य में सब प्रकार की संभावनायें हैं। यदि ये मनुष्य नारकी जैसा कार्य करता है तब ये मनुष्य नारकी ही है, आज का नहीं कल का। यदि ये मनुष्य पशुओं जैसी प्रवृत्ति कर रहा है तो ये मनुष्य पशु ही है आज का भी और कल का भी। आकार से मनुष्य है किंतु मात्र आकृति से पुरुष हो जाना पर्याप्त नहीं है जब तक प्रकृति से मनुष्य न हो। ''आवश्यक है आकृति से नहीं प्रकृति से मनुष्य होना।''

यदि कोई मनुष्य देवों की तरह से मंद कषाय के साथ धर्म-साधना में संलग्न है तो वह देव ही है, न सही आज का, कल का और जो कर्मों को क्षय करने में संलग्न है वह मनुष्य-मनुष्य नहीं

भगवान है, वह योगी आज भी भगवान् है और कल भी सिद्ध-शुद्ध परमात्मा की श्रेणी में आ जायेगा।

महानुभाव ! मनुष्य जीवन की सफलता और सार्थकता तो इसी बात में है कि जो कार्य करने योग्य है उसे पहले कर लें। मानवता के मायने क्या है? इसे समझने आये हैं। हम सबके मायने जानते हैं किसके मायने क्या होता है। हिंदी शब्द हों, अंग्रेजी शब्द हों, प्राकृत के हों, संस्कृत के हों, उर्दू के अल्फाजों के भी मायने जानते हैं किन्तु अपने जीवन के मायने नहीं जानते हैं। हम मानव हैं तो मानवता के मायने जानें, जब पशु पशुता के मायने जानता है, नारकी में आज भी नारकत्व है वह जानता है 'न रता: इति नारकी' जिसमें प्रेम नहीं पाया जाता, परस्पर द्वन्द चलता रहता है, मारकाट चलती रहती है, ऐसे नारकी होते हैं। वे उसी प्रवृत्ति में आज भी हैं। देवताओं में देवत्व आज भी ज्यों का त्यों कायम है किन्तु यदि कहीं असंतुलन आया है, तो वह मनुष्य की मनुष्यता में हुआ है।

अन्य कहीं असंतुलन नहीं पाया जाता। पेड़ जहाँ उगा है वहीं खड़ा रहता है स्वयं चलकर कहीं नहीं जाता प्रकृति का उल्लंघन नहीं करेगा, नदी का पानी जहाँ बह रहा है बहता चला जायेगा उल्लंघन नहीं करेगा कि उल्टा चले, अग्नि की शिखा ऊपर ही जाती है निर्वात स्थान पर ऐसा नहीं कि अपने आप आगे-पीछे हो जाये। हवा का स्वभाव बहना है वह चलती रहेगी किंतु सबसे श्रेष्ठ बुद्धिजीवी, उत्कृष्ट मनु की संतान, परमात्मा बनने की सामर्थ्य से युक्त यह मनुष्य अपने ही मायने भूल गया, दूसरों के मायने इसने याद कर लिये।

अन्य जीवों ने तो अपने-अपने मायने याद रखे, वे मनुष्य के मायने याद रख पाये या न रख पाये किंतु इंसान सबके मायने याद करता है डॉक्टर को ऐसा होना चाहिये, मास्टर को वैसा होना चाहिये,

राजनेता को ऐसा होना चाहिये, किसान को ऐसा होना चाहिये, एक सैनिक को ऐसा होना चाहिये, सबके मायने, सबके कर्त्तव्य जानता है किंतु स्वयं के कर्त्तव्यों से बहुत दूर रहता है। आवश्यकता है उसे उसके कर्त्तव्यों से बोध कराने की, मायने बताने की और जब तक मायने नहीं मालूम होंगे तब तक व्यक्ति उसका सदुपयोग नहीं कर सकता।

जल के मायने क्या हैं? जल के मायने हैं प्यास बुझाना, ऐसा नहीं कि पानी लिया और फेंक दिया। अरे ! जल के मायने हैं किसी के प्राण प्यास के मारे कंठ में आ गये हों और तुमने उसके कंठ तक जल पहुँचा दिया, उसके प्राण बचा दिये। जल के मायने है प्यास से मरते हुये व्यक्ति को बचाना। भोजन के मायने हैं भोजन से पीड़ित किसी व्यक्ति की क्षुधा को तृप्त कर देना, जिससे उसकी चेतना वापस लौट आये। संसार में जितनी भी वस्तुयें हैं सबके अलग-अलग मायने हैं, और जिसका जो मायना है उसका वही अर्थ यदि लगा पायें तो ठीक है। आप वस्त्र पहनते हैं शरीर की गर्मी-सर्दी की सुरक्षा के लिये, शरीर को ढाकने के लिये जिससे हमारे शरीर की इज्जत बनी रहे। जब तक वस्तु का सदुपयोग कर रहे हैं तब तक तो सही मायने जान रहे हैं अन्यथा दुरुपयोग ही है। अग्नि से कोई भोजन पकाये तब तो ठीक यदि अपने घर को ही जला ले तो मायने नहीं जानते। इसी प्रकार मानवता के मायने हैं इस मनुजता में देवत्व पैदा करना।

व्यक्ति देवत्व तो पैदा करना चाहता है किन्तु मानवता से रहित होकर। बीज से रहित होकर वृक्ष उगाना चाहता है जो कि असंभव है।

''हम चले देवता कहलाने, पर मानव भी कहला न सके,
हम चले हैं विश्व विजयी बनने, पर विजय स्वयं पर पा न सके।
हम चाहते हैं बस कैसे भी जल्दी से भगवान बनें,
किंतु नहीं चाहते इससे पहले एक अच्छे इंसान बनें॥

एक सूखी मिट्टी आर्द्र हुये बिना, गीली हुये बिना खिलौना कैसे बनेगी ? एक पाषाण का खण्ड शिल्पी के हाथ में पहुँचकर तराशने की चोट को सहन किये बिना परमात्मा की मूर्ति कैसे बनेगा? एक रंग पानी से दूर रहकर, बिना घुले चित्रकारी पर अपना असर कैसे छोड़ेगा? शक्कर दूध या जल में जाकर घुले बिना उसे मीठा कैसे करेगी? नमक दिखाई नहीं दे रहा सब्जी दाल में किन्तु उसका अस्तित्व उसमें है, स्वाद छोड़ रहा है। महानुभाव ! हम भी मनुष्य होकर अपना स्वाद छोड़ें। मनुष्य में मनुष्यता का स्वाद आना चाहिये, ज्यों मीठे में मीठापन, नमक में खारापन, मिर्ची में तीखापन, आँवले में कसायलापन, नींबू में खट्टापन होता है त्यों ही मनुष्य में मनुष्यता होना चाहिये। यदि मानव में मानवत्व है तब तो वह मानव है अन्यथा वह मानव नहीं मानवाकार पुतला हो सकता है।

मानव की क्या विशेषता है क्या लक्षण है इसका कथन करते हुये सम्यक्त्व कौमुदी ग्रंथ में श्लोक दिया-

मुखप्रसन्नं विमला च दृष्टि, कथानुरागो मधुरा च वाणी।
स्नेहाधिकं संभ्रमदर्शनश्च गुणानुरक्तस्य जनस्य चिह्नं।।

१. मुख की प्रसन्नता-प्रसन्नचित्त रहो। आचार्य शांतिसागर जी महाराज के शिष्य आ. सुधर्मसागर जी हुये उन्होंने 'सुधर्मध्यानप्रदीप' ग्रंथ लिखा उसमें कहा-जिसके चेहरे पर प्रसन्नता दिखाई दे रही है उसको धर्म-ध्यान हो सकता है। जिसके चेहरे पर संक्लेशता की रेखायें दिखायी दे रही हैं समझो वह धर्म-ध्यान से रहित है। धर्मध्यान का पहला चिह्न है प्रसन्नचित्त, प्रसन्नमुखमुद्रा। गुलाब कहता है मैं इन काँटों के बीच भी मुस्कुराता रहता हूँ और तुम फूलों के बीच में भी मुँह लटका के बैठ जाते हो, मेरी तौहीन करते हो शर्म नहीं आती। तुम्हारे पास काँटे नहीं, फूलों का हार है फिर भी चेहरे पर इतनी उदासी और मैं काँटो की सेज पर भी मुस्कुराता रहता हूँ तुम कुछ तो मुझसे सीखो।

तो मानव का पहला लक्षण है चेहरे की प्रसन्नता, किन्तु थोड़ी-थोड़ी छोटी-छोटी बातों पर मन खराब हो जाता है, माता-पिता की थोड़ी सी बात भी सुनने से पहले चेहरा बिगड़ जाता है, नाक पर गुस्सा रखा रहता है, ऐसा व्यक्ति वास्तव में सम्मान के योग्य नहीं, मनुष्यता के नाम पर कलंक है। जो प्रसन्न नहीं रह सकता उससे तो पशु अच्छे हैं जो इतने कष्टों में भी आनंदित रहते हैं कभी घबराते नहीं। एक इन्द्रिय वृक्ष हवा चलने पर झूमने लगता है, नदी की धारा कलकल करती आनंद से बहती है और तुम संज्ञी पंचेन्द्रिय होते हुये भी जबकि तुम्हारे पास प्रसन्न रहने के अनेक साधन हैं फिर भी तुम प्रसन्न नहीं रहते। एक अच्छी बात आपको बता देते हैं, देखो अभी तक सरकार ने हँसने पर, प्रसन्न रहने पर कोई जीएसटी टैक्स नहीं लगाया। आगे लगा दें तो कह नहीं सकते, जब तक नहीं लगाया तब तक खुश रहो। मुस्कुराने में तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ेगा चाहो तो अपना वजन तौल लेना कुछ बढ़ ही जायेगा, घटेगा नहीं। मुस्कुराने से तुम्हारे मित्र बढ़ेंगे ही, घटेंगे नहीं।

एक व्यक्ति ने कहा महाराज जी मुस्कुराने से आफत खड़ी हो जाती है। पूछा कैसे-तो बोला जब मैं घर में मुस्कुराता हूँ तो पत्नी फरमाइश करती है कुछ दे दो खर्च के लिये और जब मैं नहीं मुस्कुराता तो दूर-दूर खड़ी रहती है, इनका मूड ठीक नहीं है अभी कुछ न माँगो। किन्तु ऐसा नहीं है, प्रसन्नचित्त रहो खुश रहो, प्रसन्नचित्त रहने से शरीर स्वस्थ रहता है। जो व्यक्ति सदा उदास रहता है, दुःखी रहता है वह जीवन में आगे कभी हँसना चाहेगा तो भी नहीं हँस पायेगा और हँसेगा भी तो लोग कहेंगे क्यों भाई रो क्यों रहे हो। तो वह कहेगा भाई रो नहीं रहा, हँस ही रहा हूँ, क्या करूँ चेहरा ही ऐसा है। उदास रहने से चेहरा ऐसा हो जाता है। वैज्ञानिक कहते हैं 7 वर्ष में शरीर के परमाणु बदल जाते हैं, हँसता हुआ भी रोता सा दिखाई देता है। किसी कवि ने ठीक लिखा-

''उदासी जिन चेहरों का श्रृंगार करती है
मक्खी भी वहाँ बैठने से इन्कार करती है।''

उदास व्यक्ति के पास इंसान क्या मक्खी भी न बैठेगी। वह सोचती है यह इतना शोकाकुल चेहरा है यहाँ से दूसरी जगह जाती हूँ, यहाँ रहकर तो मैं ही बीमार पड़ जाऊँगी, कहीं मुझे अटैक न पड़ जाये।

''जीवन में उदासीनता तो ठीक है उदासी ठीक नहीं''

उदासीन का आशय है संसार में लीन मत रहो, इत् आसीन नहीं, उत् आसीन रहो। इत् माने संसार में लीन मत रहो, 'उत्' माने मोक्षमार्ग में आसीन हो जाओ। उदासीन वे हैं जो इत् को (घर) छोड़कर उत् (मोक्षमार्ग) में बढ़ गए। महानुभाव ! पहली बात तो यही है कि प्रसन्न रहो क्योंकि मुस्कुराने से सहनशक्ति बढ़ती है। जो व्यक्ति मुस्कुराते रहते हैं उनको देखकर अन्य व्यक्तियों का तनाव भी दूर हो जाता है। पुष्प को देखकर सामने वाले की नासिका भी तृप्त हो जाती है। एकेन्द्रिय वृक्ष है उसका एक अंश पुष्प जिसे देखकर के तुम खुश हो सकते हो तो पंचेन्द्रिय को देखकर आनंद का अनुभव क्यों नहीं ले सकते।

एकेन्द्रिय वायु से आप आनंदित हो जाते हो, एकेन्द्रिय वह जल जब बारिश हो रही हो तक उसकी मस्ती में सब भूल जाते हो वह आनंद पंचेन्द्रिय को देखकर क्यों नहीं। एकेन्द्रिय पंच स्थावर में इतनी सामर्थ्य है कि आपके मन के तनाव को दूर कर सके, तन को भी आह्लादित करने वाले हैं, वह पंचेन्द्रिय संज्ञी मनुष्य में क्यों नहीं। एक तिर्यंच के बच्चे को देखकर चेहरा खिल जाता है वहीं मनुष्य के बच्चे को देखकर क्यों चेहरा सिकुड़ जाता है? क्या कारण है ? ऐसी स्वार्थ भावना तुम्हारे मन में क्यों भर गयी है कि किसी अन्य को देखकर चेहरा खिल जाता है और मनुष्य को देखकर सिकुड़ जाता है।

महानुभाव ! सच्चा मुनष्य वही है जो हमेशा प्रसन्नचित्त रहे। ध्यान रखो क्रोध करने में, उदास रहने में, मान-मायाचारी करने में, विषयों के सेवन में आपका शरीर थकेगा, शक्तिक्षीण होगी किन्तु मुस्कुराने में शक्ति क्षीण नहीं होगी। हँसने में शक्ति क्षीण हो सकती है, हँसते-हँसते पेट में दर्द हो जायेगा। मुस्कुराहट वह है जिसमें न खुले, दाँत न दिखे, जिसे परमपूज्य आचार्य शांतिसागर जी महाराज कहते थे स्मित हास्य। सज्जन पुरुष का स्मित हास्य होता है। मुस्कुराते रहो, अपने अंदर इतना आनंद उत्पन्न करो कि रोम-रोम से बाहर निकलने लग जाये। आगे कहा-

२. निर्मल दृष्टि-मल रहित निर्मल विमल दृष्टि। यदि दृष्टि हमारी निर्मल है तो समझो सृष्टि हमारी निर्मल है। दृष्टि में विकार आ गया तो हमारी सृष्टि में विकार आ गया, बाहर की सृष्टि भले ही निर्मल बनी रहे हमारी दृष्टि में विकार आ गया तो हमारी सृष्टि विकृत हो गयी। दृष्टि निर्मल होनी चाहिये।

देखो-भालो, तको मत
खाओ-पीओ, चखो मत
बोलो-चालो, बको मत
दौड़ो-बैठो, थको मत

ये सब सूक्तियाँ बड़े बुजुर्ग कहते थे। देखो अर्थात् सहजता में देखो, भालो अर्थात् जानना, किन्तु तको मत, तकना अर्थात् बुरी निगाह से देखना। वह वासना की दृष्टि होती है। तो देखना तो है क्योंकि हमारी आत्मा का स्वभाव भी है जानना और देखना। खूब देखो-खूब देखो किंतु उसके प्रति राग भी नहीं, द्वेष भी नहीं, खूब जानो-खूब जानो किंतु ग्रहण करने का भाव नहीं तो थकोगे नहीं। व्यक्ति थकता तभी है, जब उसके प्रति अच्छे-बुरे की कल्पना कर लेता है, अच्छे बुरे का निर्णय ले लेता है या अपना बनाने का भाव रखता है तब थकता है अन्यथा नहीं।

दृष्टि निर्मल हो, शंका से रहित हो, वांछा से रहित हो, वासना से रहित हो, ग्लानि से रहित हो, मान-अपमान से रहित हो। आपकी दृष्टि किसी का सम्मान भी कर सकती है और अपमान भी कर सकती है। यदि स्नेह से देखा तो सम्मान हो गया, और यदि मुँह मोड़कर ऐसे ही चले गये तो अपमान हो गया।

''आँखों में वह पुस्तक समायी हुयी है, जो विश्व की किसी भी लाइब्रेरी में नहीं है।'

आँख की पुस्तक आँख ही पढ़ सकती है जुबान नहीं पढ़ सकती। आँखें देख लेती हैं कि तुम्हारी आँखों में क्या है, आँखों में घृणा है, प्रेम है, वैराग्य है, धर्म है या चोरी है कि सीना जोरी है, निर्भीकता है या भय है जो भी है वह सब आँखें पढ़ लेती हैं। आँख एक ऐसा केन्द्र है जहाँ से वर्गणाओं को प्रसारित किया जाता है और ऐसा केन्द्र है जहाँ पर वर्गणायें कैच की जाती हैं। यह रिले सेन्टर भी है जैसे मोबाइल आदि में कहीं दूर से कॉल करता है तो घंटी यहाँ बजने लगती है, यहाँ से वहाँ किरणें छोड़ी जाती हैं किन्तु आँखें इससे बड़ा रिले सेन्टर हैं। आँखें यहाँ से वर्गणा निकालें और सामने वाला व्यक्ति आँखें खोले बैठा है तो सामने वाले के भावों को आमूल-चूल परिवर्तित किया जा सकता है। यहाँ तक कि आप यदि पशु को भी आँख उठा कर देखो तो वह घुर्रायेगा, आँख दिखाना पशु के लिये युद्ध का प्रतीक है और आँख झुकाकर पुचकार लगाओगे तो श्वानादि दुम हिलाता हुआ आ जायेगा।

किसी छोटे बच्चे के हाथ में 2 हजार का नोट पकड़ाओ किन्तु चेहरे पर आँखों में क्रोध भरा हो, गोदी में लेना चाहो तो वह आयेगा नहीं, वह कहेगा मुझे ये नोट नहीं तुम्हारे दिल में प्रेम चाहिये। बेटा माँ के पास आ जाता है माँ चाहे सुन्दर है या कुरूप, रोगी है या निरोगी, निर्धन है या अमीर रोता बालक माँ का पल्लू पकड़ कर चिपट जाता

है किंतु कोई ये सोचकर बालक को गोदी में उठाये कि मैं सुंदर हूँ या अमीर तो तुम्हारी सुंदरता या अमीरी बालक को नहीं खरीद सकती। वह बालक जिन आँखों में शुद्ध प्रेम देखता है वहीं चला जाता है, बाहर का धन बालक को खरीदने के लिये बौना पड़ जाता है। तो मानव का लक्षण है वह निर्मल दृष्टि से जीये।

आप वस्त्रों को खुद भी धोते हो और धोबी से भी धुलवाते हो, चेहरा भी धोते हो, दाँत भी साफ करते हो, पेट में कब्ज हो जाये तो डॉक्टर वैद्य हकीम की सलाह से उसे भी साफ करते हो, सब कुछ की सफाई करते हो, हम तो इतना कहना चाहते हैं दृष्टि की सफाई भी करो। आँखों की सफाई की बात नहीं कर रहा दृष्टि की सफाई कह रहा हूँ। जब दृष्टि निर्मल होती है तब दृष्टा भी निर्मल माना जाता है। दृश्य कैसे भी हों वे निर्मल ही दिखाई देते हैं और दृष्टि यदि समल है तो दृश्य कितने भी निर्मल हो समल ही कहलायेंगे, दृष्टा भी समल माना जायेगा। श्वेत दीवार को क्या एक क्षण में काला किया जा सकता है? हाँ किया जा सकता है काले रंग का चश्मा लगा लो सभी वस्तुयें काली ही दिखाई देंगी। तो दृष्टि में यदि कालापन आ गया, मलिनता आ गयी तो उसे कौन साफ कर सकता है? कौन धो सकता है? और जिसकी दृष्टि में मलिनता है तो दृष्टा निर्मल कैसे हो सकता है। जब दृष्टि व दृष्टा दोनों ही श्याम हैं तब मान लेना चाहिये उसे दृश्य भी समल दिखाई देंगे।

''तुम दृश्यों को साफ करने में लगे रहते हो, योगी दृष्टि को साफ करने में लगे रहते हैं।''

भला आदमी वही है जो अपनी दृष्टि को निर्मल करता है। अगली बात कही-

३. कथानुरागो-कथा-'क' यानि आत्मा अर्थात् आत्मा की कथा। कथा एक ऐसी चीज है जो छोटे से लेकर बड़े वृद्धों तक सभी

को पसंद आती है। कथा को हलवे की उपमा दी जा सकती है जिसे बिना दाँत वाला बालक और बिना दाँत वाला वृद्ध और दाँत वाला युवा भी खा सकता है। कथा है ही ऐसी चीज। 'क' अक्षर अर्थात् आत्मा। जो केवल कहता है वह 'आत्महता' है। जो करता है सो 'आत्म रक्षता' है। आचार्यों ने कहा कहो मत तुम करो क-हो अर्थात् तुम तो आत्मा हो जब तुम आत्मा हो तो कहना सिर्फ क्यों-करो। तुम कर्ता बनो, आत्मा में रत हो जाओ। आत्मा में रत हो जाना ही तुम्हारा सबसे अच्छा कर्तापना है, अन्य कार्यों में रत होना कर्तापना नहीं है।

यहाँ कहा कथानुरागो। जब भी कथा हों यदि सुनी हैं तो उनके प्रति अनुराग करो इससे तुम्हारी कषायें शमित हो जायेंगी। कथा कषायों को शमित करने का सबसे अच्छा उपाय है। कथा के माध्यम से परिणाम शांत होते हैं, मन में श्रद्धा जाग्रत होती है और व्यक्ति परमात्मा बनने के स्वप्न देखता है। बिना कथा सुने स्वप्न नहीं देख सकता। जब देशना सुनता है तब परमात्मा बनने की भावना जाग्रत होती है। बिना देशना के कोई परमात्मा नहीं बन सकता।

४. मधुर वाणी-अगली बात कही वाणी सदैव मीठी हो। आप चाहते हैं कि मेरे कान में मिष्ट और शिष्ट शब्द ही आयें, मेरे मुख में मिष्ट यथेष्ट पदार्थ ही आयें, आप चाहते हैं मेरी नासिका में सुगंधित गंध ही आये, मेरी आँखों के सामने अच्छे-अच्छे दृश्य ही दिखायी दें। आप चाहते हैं मेरे शरीर को शरीर के अनुकूल ही पदार्थों को सेवन करने का सुख प्राप्त हो, प्रतिकूल नहीं चाहते हैं। जब आप इष्ट और मिष्ट सुनना चाहते हैं तो सामने वाले को कष्टकर शब्द क्यों सुनाते हैं। क्या आपके शब्दकोश में मिष्ट शब्दों का अभाव हो गया है। भारतीय शब्द कोश में लाखों-करोड़ों अरबों शब्द हैं, अनेक भाषायें हैं जिनमें असंख्यात शब्द हैं, असंख्यात शब्दों में से अच्छे-अच्छे शब्दों का प्रयोग कर लो, नहीं तो रखे-रखे सड़ जायेंगे। प्रयोग करने

से बढ़ते चले जायेंगे। दूसरी बात ये है कि जिन शब्दों का प्रयोग आप करते हो, उन्हीं शब्दों के आप मालिक हो, जिनका प्रयोग नहीं करते उसके मालिक नहीं हो। धन तो घट जाता है तुम्हारे पास 1000 रु. हैं खर्च कर दिये तो जेब खाली हो गयी, यदि मीठा शब्द है किसी से कह दिया, तो क्या ये खर्च हो गये। अच्छा बोलने से तो एक-एक संस्कार बढ़ गया। जीवन में एक बात ध्यान रखना।

''किसी मेहमान को रोटी पर घी लगाकर देना या न देना, किन्तु उससे बोलने के साथ जी लगाकर के अवश्य देना।''

घी लगाने से आनंद आये या न आये, घी में डुबोकर के आपने पूड़ी खिला दी पर नाम के साथ आदर वाचक जी नहीं लगाया तो वह पूड़ी भी जहर बन सकती है। शब्दों में जी लगाने से केवल कान तृप्त नहीं होते आत्मा भी संतुष्ट हो जाती है। रोटी में घी लगाने से कई बार जिह्वा भी तृप्त नहीं होती। कई बार जिह्वा की तृप्ति कर्ण की तृप्ति से होती है व्यक्ति यदि प्रेम से मना-मना कर खिला रहा है, भले ही सूखी रोटी खिला रहा है मन में तब भी आनंद आ रहा है, रसना भी उसी में रस ले रही है और यदि शब्द कड़वे हैं तो समझ लेना वे कड़वे शब्द जहर बन जाते हैं।

एक बार अकबर ने अपनी सभा में पूछा-सबसे अच्छा मीठा कौन सा होता है? सभासदों ने गुड़, मिश्री, शक्कर, खांड, बूरा, गन्ने का रस आदि-आदि बताया। बीरबल चुपचाप बैठा रहा-अकबर ने कहा-अरे ! बीरबल तुम चुप कैसे बैठे हो? वह बोला-जहाँपना मैं इन सभी उत्तरों से सहमत नहीं हूँ। मतलब ? कुछ और कहना चाहते हो? हाँ महाराज सबसे मीठी यदि होती है तो वाणी होती है, वचन होते हैं। यह सुनकर लोगों ने हँसना प्रारंभ कर दिया-वचनों का मीठा क्या मीठा, यदि है तो खाकर दिखाओ। बादशाह भी सबके साथ हँसने लगे, बीरबल आज का तुम्हारा उत्तर तो पसंद नहीं आया। बेतुका रहा, कोई और चीज कहते तो मानता।

बीरबल ने कहा–महाराज 1 सप्ताह का समय मुझे दें, वचन का क्या मीठा क्या कड़वा इसे मैं सिद्ध करना चाहता हूँ। बीरबल दरबार से चला गया, 2–3 दिन बाद आया। अकबर से कहा आज मेरे यहाँ मेरे पोते का जन्मोत्सव मनाया जा रहा है आपसे निवेदन है आप मेरा आतिथ्य स्वीकार करें। बादशाह ने कहा–मैं तो नहीं आ सकता मेरे कार्यक्रम व्यस्त हैं। बीरबल बोला यदि आप न आओगे तो मेरा मन बहुत दु:खेगा और लोग भी कहेंगे कि तुम जिस राज परिवार में नौकरी करते हो वे ही नहीं आये। अकबर ने कहा–यदि तुम्हारा ज्यादा ही आग्रह है तो मैं बेगम साहिबा को भेज दूँगा। बीरबल बोले–बहुत अच्छा बेगम साहिबा आयेंगी मैं तब भी संतुष्ट हो जाऊँगा।

शाम का समय हुआ, बेगम साहिबा अपनी सखियों के साथ पहुँचीं। बीरबल ने मार्ग से लेकर घर तक फूल बिछवा दिये, घर पहुँचकर स्वर्णासन पर विराजमान कराया खूब सम्मान किया, और इतना अच्छा स्वादिष्ट भोजन बनाया कि बेगम साहिबा भोजन करते–करते कहने लगी–मैंने आज तक इतना स्वादिष्ट भोजन नहीं किया। बीरबल हाथ जोड़कर निगाह नीची करके कहता है ये सब आपका ही है, बादशाह की कृपा दृष्टि है। भोजन के उपरांत बेगम डोली में बैठकर महलों की ओर आने लगी, तभी बीरबल अपनी पत्नी से कहता है–अरेऽऽ सुनती हो, इस स्थान को अच्छे से साफ कर देना, दो–चार बार सर्फ भी डाल देना, वो बोली क्यों? अरे तुझे नहीं मालूम अभी–अभी तक तुर्कनी यहाँ भोजन करके गयी है, स्थान अशुद्ध हो गया है।

ये शब्द चलते–चलते बेगम के कानों में पड़ गये। अब तो उसके शरीर में आग लग गयी और जाकर के सीधे कोप भवन में पड़ गयी। बादशाह लौटकर आये–पूछा क्या हुआ? तो पता चला जब से बीरबल के यहाँ से आयी है तब से कोप भवन में है। बीरबल को बुलाया–पूछा

तुम्हारा इतना दु:साहस। बीरबल बोला-महाराज ! गुस्ताकी माफ हो, मैंने तो अपनी पूरी शक्ति के अनुसार बेगम जी का खूब सम्मान किया, कोई कमी नहीं की, खूब मिठाई बनायी खिलायीं। बादशाह ने बेगम से पूछा-क्या ये सही कहता है ? बेगम बोली हाँ महाराज, फिर क्या बात है ? बेगम बोली-महाराज इसने जो शब्द कहे थे वो मुझे चुभ गये। इसने अपनी पत्नी से कहा-इस स्थान को साफ कर लेना अभी-अभी तुर्कनी भोजन करके गयी है, इसे सुनकर मेरा खाया-पीया सब बेकार हो गया।

बीरबल बोला-महाराज ये शब्द मेरे मुँह से निकल गये, ये तो वचन हैं, वचनों का क्या मीठा, क्या कड़वा? जो मैंने इतना मीठा खिलाया वह सब क्या इन वचनों के आगे कड़वा हो गया? अकबर ने कहा-बीरबल तुम ठीक कहते हो मीठा तो वास्तव में वाणी का मीठा होता है।

''वाणी में यदि मधुरता हो तो व्यक्ति मिर्ची भी बेचकर आ जाता है, कड़वी वाणी से तो गुड़ भी नहीं बिक पाता।''

महानुभाव ! आगे कहा-

५. स्नेह की अधिकता-प्रेम जब संकीर्ण हो जाता है तो मोह बन जाता है। एक के प्रति या जिसे अपना मान लेता है उसके प्रति प्रेम होता है तो मोह बन जाता है, जब एक से ज्यादा में फैलता जाता है तो प्रेम कहलाता है। प्रेम जब अनंत के प्रति फैल जाता है तो वात्सल्य कहलाता है और वात्सल्य कभी संसार में बांधता नहीं है। स्नेह को जितना बढ़ा सको उतना बढ़ाओ, अभी तक आपका स्नेह-प्रेम एक-दो-चार-छ: के प्रति है अभी वह वास्तव में प्रेम नहीं है वह स्वार्थ है। उसकी परीक्षा भी आप कर लेते हैं। स्वार्थी की पहचान पास में रहने से होती है और नि:स्वार्थी की पहचान दूर जाने पर होती है। नि:स्वार्थी दूर है तब भी तुम्हारा हित कर रहा है, पास में आकर जो तुम्हें ठगने की कोशिश कर रहा है वह स्वार्थी है।

''बड़ी वस्तु भी छोटी दिखाई देती है, कब ? जब उसे हम दूर से देखें या गरूर से देखें।''

आपके हृदय में इतना स्थान है जितना सागर में भी नहीं है। आपके हृदय में इतना विशाल प्रेम का नीर समा सकता है कि शायद मध्यलोक के समुद्रों में भी इतना जल न समा पाये, किन्तु यदि आप उसमें प्रेम का जल न भरना चाहें ये आपकी बात है। भरना चाहें तो भरता चला जाये, इसलिये सभी को स्नेह वात्सल्य उदारता के साथ दीजिये। उदारता से दिया है, किसी को निश्छल भाव से दिया है तो वह निश्चित रूप से सौ गुना, हजार गुना होकर लौटकर आयेगा, घटेगा नहीं और यदि नहीं दिया तो नहीं आयेगा। देने के लिये हैसीयत नहीं देखना है, दिल की उदारता को देखना है। जिसका दिल उदार है उसकी हैसीयत देने की हो या न हो पर ये सत्य है उदार दिल वाले ही दान देते हैं। कई बार छोटे व्यक्ति ही काम आते हैं।

''छोटा व्यक्ति मौके पर काम आता है और बड़ा व्यक्ति मौका आते ही औकात दिखा जाता है।''

जीवन में आजमाकर देखना जो स्वयं को छोटा मानता है आपको बड़ा मानता है तो आपके आते ही अनुनय-विनय करेगा, मैं आपके क्या काम आ सकता हूँ, ये सब आपका है। वह अपना जीवन, धन, तन सब देकर भी आपके काम आयेगा, जैसे चूहा शेर के काम आया था किंतु बड़ा व्यक्ति मौका आते ही औकात दिखा देता है।

महानुभाव ! जीवन में स्नेह बाँटो किंतु बेशर्त। बिना शर्त का स्नेह तुम्हारा धर्म बन जायेगा।

प्रेम जब अनंत हो गया, रोम-रोम संत हो गया।
आपकी कृपा क्या हुयी, मन मेरा बसंत हो गया॥

जब प्रेम अनंत हो जाये तो संत होता है, जब प्रेम संकीर्ण होता है तो घृणित होता है। सीमित पानी जब मिट्टी में जाता है तो कीचड़

बन जाता है, निस्सीम पानी जब मिट्‌टी में आता है तो मिट्‌टी भी धुल जाती है। तुम्हारे चित्त में निस्सीम प्रेम आ जाये तो तुम्हारा चित्त निर्मल हो जायेगा, प्राणी मात्र की पीड़ा तुम्हें अपनी लगेगी, प्राणी मात्र का दु:ख तुम्हें अपना लगेगा और जब प्रेम सीमित होगा तो तुम्हें लगेगा दूसरे को भले ही परेशानी हो किन्तु अपना काम चलाओ।

संभ्रम वहाँ होता है जिसके प्रति पक्ष की भावना होती है। यदि आपका कोई व्यक्ति कहीं दोषी भी है और आपसे पूछा जाए उसने ऐसा किया तो आपका चित्त कहेगा नहीं। सामने देखकर के भी भ्रम पैदा हो रहा है इसका आशय है तुम्हारा उसके प्रति गुणानुराग है, अनुरक्ति है। इसे उपगूहन अंग के साथ जोड़कर चलें तो उपगूहन अंग का पालन करने वाला व्यक्ति दूसरों के दोषों को देखकर भी ढाँक देता है। अपने दोषों को उघाड़ता है, अपनी अच्छाईयों को ढाँकता है। वह दोष नहीं गुणों को देखता है। 'कुरान शरीफ' में एक जगह लिखा है-शैतान से घृणा करो, भले आदमी से नहीं।

एक व्यक्ति ने कहा यह बात ठीक नहीं लगी, पूछा क्यों? बोले-मुझे तो कोई शैतान नजर आता ही नहीं, मैं घृणा किससे करूँ। तो जिसे शैतान दिखाई नहीं देता, ये उसकी दृष्टि की निर्मलता है, इसका आशय यह नहीं कि संसार में शैतान नहीं। शैतान तो हैं पर दृष्टि की निर्मलता है। ऐसे ही जब प्रेम अनंत हो जाता है तो ऐसा नहीं संसार में कोई दोषी नहीं, प्रेम अनंत होने पर अच्छाई को देखता है बुराई को नहीं। मानवता की महिमा को मंडित करने वाले अनेक उदाहरण हैं।

गोपाल दास बरैया जी मुम्बई से मुरैना आ रहे थे, उनका बेटा-पत्नी उनके साथ थे। उन्हें ज्ञात था कि उनका बेटा अभी 8 वर्ष से कम उम्र का है इसलिये उन्होंने उसका आधा टिकट ले लिया। जब ट्रेन में बैठ गये तब उनकी पत्नी ने कहा-आज हमारे बेटे का

जन्मदिवस है। 8 वर्ष का पूरा हो गया। वे बोले-अरे ! मुझसे तो बड़ी गलती हो गयी, मुझे नहीं पता था कि ये 8 वर्ष का हो गया। वे बीच स्टेशन पर उतर गये और टी.टी. के पास गये, कहा मेरे बेटे का पूरा टिकट बना दीजिये, मुझे अपने बेटे की सही उम्र का भ्रम हो गया था। टी.टी. ने कहा-कोई बात नहीं आप आगे चले जाईये आपसे कोई कुछ नहीं कहेगा। बोले मुझे बहुत आगे तक जाना है, कहा ना मुरैना तक आपको कोई दिक्कत नहीं होगी आप निश्चिंत होकर जाइये। वे फिर बोले टी.टी. साहब मेरी यात्रा मात्र मुरैना तक की नहीं है। मतलब ? मतलब ये है कि मेरी आत्मा जानती है कि मैं चोरी कर रहा हूँ तुम यहाँ पर कह रहे हो कि मुझे अपराध का फल न मिलेगा, किंतु मुझे परलोक में कौन बचायेगा? मुझे आधी टिकट और बना कर दो, जो पेनल्टी लगती है वह चार्ज बताईये और पैसे लीजिये।

आपने बनारसी दास जी का नाम सुना होगा। घर में चोर आ गये, जब सब चोर एक दूसरे की पीठ पर कालीमिर्च के बोरे रख रहे थे तो सभी तो ले-लेकर चले गये, अंत में एक चोर रह गया, वह बोरी नहीं उठा पा रहा था। बनारसी दास जी ने देखा कि ये बोरी उठाने में असमर्थ हो रहा है उन्होंने स्वयं उठकर बोरी उसकी पीठ पर रख दी। उस चोर ने अपनी माँ से जाकर कहा-माँ आज तो हमने ऐसे घर में चोरी की है जहाँ बड़ा आश्चर्य हुआ कि जब सब लोग बोरी लेकर चले गये, मैं पीछे अकेला रह गया तो उस व्यक्ति ने स्वयं मेरे ऊपर बोरी रखी और किवाड़ बंद कर सो गया। माँ कहती है लगता है बेटा-आज तू पंडित बनारसी दास जी के घर से चोरी करके लाया है, जा उन्हें वापस करके आ। सुबह-सुबह माँ-बेटे दोनों वहाँ पहुँचे और कहा-ये हमें नहीं चाहिये, क्षमा करना हमने आपके यहाँ से चोरी की। पंडित जी बोले-मुझे इसकी आवश्यकता नहीं है आपको धन की अधिक आवश्यकता है, मुझे जब आवश्यकता होगी तब व्यवस्था अपने आप हो जायेगी।

महानुभाव ! मानवता के मायने यहाँ परिलक्षित होते हैं-एक पुल की चढ़ाई पर कई व्यक्ति रिक्शा चला रहे हैं। एक रिक्शे में एक बहुत भारी व्यक्ति बैठा था, पुल की चढ़ाई बहुत ऊँची थी। उस रिक्शे वाले ने अपनी सवारी को देखा, पुनः और जोर लगाता है, पसीना-पसीना होता जाता है, रिक्शा खींचता चला जाता है। उस रिक्शे में बैठा व्यक्ति कहता है-अरे ! लगा ताकत चला जल्दी, तू पैसे लेगा न। बेचारा सुनता जा रहा है और रिक्शा चलाता जा रहा है। दूसरा रिक्शे वाला जो उसी पुल पर पीछे आ रहा है, उसकी स्थिति भी ऐसी ही है, उसकी सवारी वाला उतरा तो नहीं पर उसे देखकर कहता है-भाई वास्तव में तुम्हारा परिश्रम सम्मान के योग्य है, तुम इतनी मेहनत करते हो, पसीना बहाते हो तब दिन भर में 30-40 रु. कमा पाते हो, धन्य है तुम्हारी मेहनत।

तभी पीछे से एक और रिक्शे वाला आ रहा था। उसकी सवारी ने देखा चढाई है, वह रिक्शे से उतरा और कहा-भाई तू इतनी दूर से रिक्शा चलाकर ला रहा है और मैं ऐसा वृद्ध अपंग भी नहीं हूँ कि दस कदम पैदल न चल सकूँ, ये चढ़ाई खत्म होते ही पुनः बैठ जाऊँगा। अगला रिक्शे वाला आता है, उसकी सवारी भी उतर जाती है और क्योंकि वह रिक्शा चालक भी उम्र में छोटा है, उसे बड़ी मुश्किल हो रही थी रिक्शे को खींचने में। उस सवारी ने उसके रिक्शे पर थोड़ा हाथ लगा दिया और कहा मेरा कुछ घट गया क्या, उस रिक्शे वाले ने उसके पैर छुये और कहा आपने इतने बड़े व्यक्ति होकर के मेरे रिक्शे को बढ़ाने में हाथ लगाया, आप भगवान आदमी हैं, आपके मन में मेरे प्रति इतनी करुणा दया देखकर मेरा हृदय आर्द्र हो गया।

महानुभाव ! अब आप बताओ मानवाकार तो सभी दिखाई दे रहे हैं, सच्चा मानव कौन सा है? एक मानवाकार में खूंखार शेर है जो खाने को दौड़ रहा है। एक गीदड़ है जो मायाचारी कर रहा है

मीठी-मीठी बातें कर रहा है। एक व्यक्ति में थोड़ी इंसानियत है जो उतर कर दस कदम चल लेता है और चौथे वाला तो वास्तव में देव तुल्य है जो मानवों के बीच में देवता है। मानवता के मायने यही है कि हमारे अंदर मानवता जाग्रत हो।

ईश्वर चन्द विद्यासागर जी जो करुणा दया से भीगे, सरल सहज थे। वे नाम ख्याति की चाह से बहुत दूर प्रशस्ति व प्रमाणपत्रों से विरक्त थे। वे जरूरतमंदों की सहायता करने में रुचि रखते थे और ऐसे सहायता करते थे कि दूसरे व्यक्ति को तो छोड़ो दूसरे हाथ को भी पता न चल पाये कि सहायता की है। एक बार जंगल से निकलकर जा रहे थे, जंगल में वृक्ष के नीचे किसी व्यक्ति को बैठे हुये देखा। उसे देखकर पूछा-भाई! आप बहुत उदास दिखाई देते हो, तुम्हारी उदासी का क्या कारण है? वह बोला-भाई मेरा नाम पूछकर क्या करोगे, सैकड़ों लोगों ने मेरा नाम पूछा है। पर कोई कुछ न कह सका। वे बोले आप परेशान लग रहे हो यदि हर्ज न हो तो इस परेशानी का कारण मुझे बताईये, परेशानी बताने से मन हल्का हो जायेगा। वह व्यक्ति कहता है रहीम जी ने कहा है-

रहिमन या मन की व्यथा मन ही राखो सोय।
सुन इठलाएँ लोग सब बाँट सके न कोय॥

इसलिये मैं अपनी परेशानी को बताकर क्या करूँगा? वे बोले बताओ तो सही-वह बोला मेरे दादा-पिता का बनाया मकान है, किसी व्यक्ति ने उस पर केस कर दिया, उसे घर में स्थान दिया था रहने के लिये, उसने कब कागजों पर मेरा अंगूठा लगवा लिया मुझे पता भी न चला। आज मेरे मकान की नीलामी होने वाली है यदि मैंने जुर्माने के 300 रु. न भरे तो मेरा परिवार-बच्चे सब बेघर हो जायेंगे, मैं बर्बाद हो जाऊँगा, कहते-कहते उस व्यक्ति की आँखों से आँसू बहने लगे। ईश्वर चन्द्र विद्यासागर पेड़ के नीचे खड़े थे, उस व्यक्ति

की ओर उनकी पीठ थी और बातें सुन रहे थे। सुनकर के उत्तर दिये बिना, मात्र इतना कहकर कि वास्तव में तुम्हारी बहुत दु:खद कहानी है, अब मैं चलता हूँ, चले गये। वह व्यक्ति आँसू पोछता हुआ कहता है–इसने फिर मेरे घावों को हरा कर दिया मैं शांति से बैठा था, चलो कोई बात नहीं जो भाग्य में है उसे कौन छीन सकता है।

और भारी कदमों के साथ धीमे–धीमे चलकर अदालत पहुँचा। सोच रहा था, आज अदालत ने मुझे तीसरा मौका दिया है फिर भी मैं जुर्माना नहीं चुका पाया, आज पुन: प्रार्थना करूँगा कि मुझे एक मौका अवश्य दें, मैं जरूर ही 300 रु. का जुर्माना चुका दूँगा। वह पहुँचा और बाबू से कहता है भैया ! व्यवस्था पूरी नहीं हुयी, साहब से कह दो मेरी प्रार्थना को सुनकर मुझे तीन महीने का समय देकर एक मौका दे दें, मैं कुछ भी करके पैसे दे दूँगा। वह बाबू बोला–भाई मजाक क्यों करते हो, कैसी मजाक ? अरे जो जुर्माना जमा करना था, वह तो जमा हो गया, देखो तुम्हारे नाम लिखा है। वह बड़ा आश्चर्य करता है, उसके मन में खलबली पैदा हो गयी, लौटकर आया, सोच में डूबा है किसने मेरी सहायता की होगी?

मैंने सबसे कहा भाई–बंधु–मित्र, पड़ौसी सब से कहा इसमें से कौन व्यक्ति ऐसा है जो चुपचाप मेरी सहायता कर गया, ये 300 रु. तो बहुत मायने रखते हैं। उसने खूब दिमाग लगाया पर समझ नहीं आया किसने मदद की। पुन: उसने सोचा हो न हो ये वही व्यक्ति होगा जो आज सुबह मुझे वृक्ष के नीचे मिला था। उसका चेहरा मैंने बस एक बार देखा था, किन्तु वह व्यक्ति कौन था? मैंने नाम भी नहीं पूछा।

एक दिन वह पुन: उसी पेड़ के नीचे बैठा और ईश्वर चंद विद्यासागर उधर से निकल रहे थे। उसने देखा और खड़ा होकर उनके पैर पकड़ लिये। विद्यासागर ने उठाया–कहा क्या कर रहे हो, कौन हो

तुम ? वह बोला–मैंने पहचान लिया। वे बोले–मैं कोई चोर थोड़े ही हूँ जो पहचान लिया। अरे नहीं–नहीं तुम चोर नहीं भगवान हो। अरे मैं कोई भगवान नहीं। देखो बनने की कोशिश न करो, तुम वही व्यक्ति हो जो आज से कुछ माह पहले मुझे मिले थे, तुमने ही मेरी 300 रु. की सहायता की थी। विद्यासागर की आँखों में भी आँसू आ गये, उस व्यक्ति की आँखों में भी आँसू आ गये। ईश्वरचन्द्र ने कहा–भैया ! यदि तुमने वास्तव में मुझे पहचान लिया तो मेरी तुमसे एक प्रार्थना है तुम इस बात को किसी से कहना नहीं कि मैंने तुम्हारी सहायता की।

महानुभाव ! मानवता के मायने यही होते हैं जब मानवता आती है तो रोम–रोम से झलकती है। वे घटनायें भी हमें अंदर से आर्द्र कर देती हैं। क्या ऐसा भी कोई व्यक्ति होगा जो इस तरह किसी की मदद करे। कहने को तो बहुत दृष्टांत होते हैं पर समझने के लिये एक बात ही पर्याप्त होती है। एक बात भी समझ में आ जाये तो पूरा जीवन परिवर्तित करने वाली होती है। यदि हम जीवन को न बदलना चाहें तो सैकड़ों दृष्टांत भी कम पड़ सकते हैं।

लॉरेन्स लेमिएक्स का नाम सुना होगा। ओलंपिक में एक बार नाव रेस चल रही थी पूरा विश्व देख रहा था, उसकी नाव सबसे आगे चल रही थी। उसने देखा भँवर में कोई व्यक्ति फँस गया, वह टॉप पर आने वाला है किन्तु उसने अपनी नाव रोकी और उस फँसे मनुष्य को बचाया। दुनिया कह रही थी ये कैसा पागल है जो प्रथम पुरस्कार को पाने वाला था, दूसरे को बचाने के चक्कर में पीछे रह गया किन्तु उसे बहुत आनंद आया। वह कहता है मैं आज वास्तव में जीत गया, रेस जीतकर मेरी जीत नहीं कहलाती। जीतना तो ये ही होता है यदि अपने माध्यम से किसी के प्राणों की रक्षा हो जाए। मानवता के मायने यही होता है कि अपनी जीत को पराजय में बदलने के लिये तैयार हो जायें। जहाँ मानवता होती है वहाँ हारकर भी जीत होती है।

एक विद्यार्थी टूर्नामेण्ट में खेलने के लिये गया। उस टूर्नामेंट में अच्छा पुरस्कार मिलता था। उसके लिये उसने खूब मेहनत की, सभी अध्यापकों को प्रधानाचार्य को उम्मीद यही थी, पूरे गाँव के लोगों को यही विश्वास था कि यही जीतेगा। प्रतियोगिता भाला फेंकने की थी, उसने भाग लिया तो आते-आते अंत में तीन प्रतियोगी बचे, पुन: तीन में से एक हार गया। अब दो बच्चे बचे। उस बालक का निशाना दो बार चूक गया, वह हार गया। स्कूल के विद्यार्थियों को, अध्यापकों को आश्चर्य हुआ ये तो कभी हारता ही नहीं, जो आँख बंद करके भी निशाना लगा लेता था आज इसे क्या हो गया, उससे पूछा क्या कारण रहा?

वह बोला क्षमा करना मैं आपकी अपेक्षा को पूर्ण नहीं कर पाया किंतु मैंने भगवान की अपेक्षा पूर्ण की है। मतलब ? मतलब ये कि मैं जानता हूँ इस प्रतियोगी के पास पढ़ाई के लिये कुछ भी नहीं है। इसके पिता नहीं हैं, माँ हैं जो दूसरी जगह छोटा-मोटा काम करती है। ये पढ़ाई से वंचित रह जाता इसलिये इसने प्रतियोगिता की तैयारी की, कि इसे वह पुरस्कार मिल सके जिससे ये अपनी पढ़ाई कर सके। यदि मुझे ये पुरस्कार मिल जाता तो मेरा तो कुछ भी नहीं सुधरता किन्तु इसे मिल गया मुझे अच्छा लगा क्योंकि इसका संकल्प था यदि ये प्रतियोगिता जीत गया तो अपनी पढ़ाई प्रारंभ करेगा। इसलिये सर ! मैंने प्रमाद से भाला फेंका था, हारने के लिये। सभी अध्यापकों ने उसे हृदय से लगा लिया और कहा वास्तव में आज तुम्हारी सच्ची जीत हो गयी।

भाला प्रतियोगिता में तो कोई भी जीत सकता है किन्तु जो मानव के हृदय को जीत ले, उसकी बात को समझ ले वही वास्तव में मानवता होती है। मानवता के ये सब गुण हमारे अंदर आ जायें तभी हम सच्चे मानव कहला सकते हैं। यदि उपरोक्त गुण नहीं हैं तो चाहे

हमारा शरीर कितना ही बड़ा हो जाये, हमारा मकान महल कितना ही बड़ा हो जाये, हमारी ख्याति कितनी बड़ी हो जाये, हमारा नाम कहीं भी पहुँच जाये, हम अपनी आत्मा से पूछें क्या हम बड़े हैं क्या हम मानव हैं? यदि नहीं हैं तो हमें मानव बनने की कोशिश करनी चाहिये। इन्हीं सद् भावनाओं के साथ कि आप भी एक अच्छे मानव बनें, मानवता को अपने अंदर परिलक्षित करें मैं अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देता हूँ।

।। ''श्री शांतिनाथ भगवान की जय'' ।।

६. आई. पी. एस.

महानुभाव ! प्रत्येक देश का कोई संविधान होता है, प्रत्येक घर का कोई संविधान होता है, प्रत्येक संस्था का कोई संविधान होता है और प्रत्येक व्यक्ति का कोई संविधान होता है। भारतीय संविधान के अनुसार प्रत्येक भारतीय का कर्त्तव्य है कि वह उस अनुरूप अपनी प्रवृत्ति करे। यदि वह तदनुरूप प्रवृत्ति नहीं करता है तब पुन: व्यवस्था की गई अदालत की। एक अलग संहिता बनायी आई.पी.सी. इंडियन पैनल कोर्ट उसके अनुसार दण्ड के मापक मान दिये गये, जिसने जिस प्रकार का अपराध किया है, उसे उसी प्रकार की सजा सुनानी चाहिये।

26 जनवरी 1950 के पहले जो संविधान डॉ. भीमराव अम्बेडकर आदि ने मिलकर तैयार किया और गाँधी जी को दिखाया, वे बोले-इसमें आपने इतने अधिनियम, धारा आदि बनाये हैं ये अपर्याप्त हैं। वे लोग बोले गाँधी जी फिर आप ही सुझाव दीजिये, इसमें क्या बढ़ाना है, क्या घटाना है ? तब वे बोले-यदि आदमी अपने कर्त्तव्यों का पालन करे तो संविधान की कोई आवश्यकता नहीं और यदि आदमी स्वयं अपने कर्त्तव्यों का पालन न करे तब भी संविधान की कोई आवश्यकता नहीं। स्वयं ही व्यक्ति अपने कर्त्तव्य को धर्म मानकर पालन करें। वह कर्त्तव्य मुझे करना पड़ रहा है ऐसी बात न कहे।

महानुभाव ! भारतीय संविधान का पालन करना प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है और सबके डिपार्टमेण्ट अलग-अलग होते हैं। कौन नागरिक सामान्य आदमी है, कौन व्यक्ति राज्य व्यवस्था संभालने वाला है, कौन क्या-क्या संभाल सकता है इसके लिये सदस्य बनाये, एम.पी. आदि बनाये, पुन: अलग-अलग राज्यों में सदस्य बनाये विधान सभा के सदस्य बनाये, इसके साथ-साथ देश का सर्वोच्च नेता

राष्ट्रपति का चयन किया। इन सभी को व्यवस्थापक बनाया, ये किस प्रकार अपने-अपने कार्य करें और साथ ही सामान्य जनता किस प्रकार शांति से रह सके। देश की सुरक्षा के लिये बॉर्डर है वहाँ आर्मी लगा दी किंतु अंतरंग की व्यवस्था के लिये शांति के लिये आर्मी की आवश्यकता नहीं उसके लिये भारतीय पुलिस चाहिये। भारतीय आरक्षी सेवा, जो रक्षा का कार्य करती है और पुलिस को सहज स्थिति में एनकाउण्टर करने के आदेश नहीं होते। कई बार पुलिस वाले लाठी चार्ज सहन करते जाते हैं कोई भले ही अचानक सामने से वार कर दे किन्तु वे अचानक वार नहीं कर सकते।

महानुभाव आई.पी.एस. का अर्थ आप सभी लोग जानते हैं 'Indian Police Service' (भारतीय आरक्षी सेवा व्यवस्था) इसे हम ऐसे भी देख सकते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में आई.पी.एस. है। चाहे वह किसी भी पद पर आसीन हो, चाहे कोई भी कार्य कर रहा है, हम समझ सकते हैं वह भी अपने आप में आई.पी.एस. है। क्योंकि वह स्वयं में अपनी आत्मा की रक्षा व सेवा करने वाला है। यदि वह अपनी आत्मा की रक्षा व सेवा करने वाला नहीं है तो वास्तव में वह व्यक्ति सही नागरिक ही नहीं है। उसका प्रथम कर्त्तव्य ही अपनी रक्षा करना व सेवा करना है।

जो इसमें असमर्थ है यदि दूसरे की सहायता की आवश्यकता है तो समझ लो वह दूसरे की सेवा रक्षा नहीं कर सकता। साधु के लिये बताया स्वयं अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुये किसी रोगी साधु की सेवा करो, अपना काम पूर्ण करने के उपरांत समय निकालो, परोपकार तभी किया जा सकता है। जो स्वयं के कार्य में ही असमर्थ है वह कभी दूसरे के लिये सहयोगी नहीं बन सकता, इसलिये प्रत्येक प्राणी अपने आप में आई.पी.एस. है। अलग-अलग डिपार्टमेण्ट के माध्यम से देखते हैं।

विद्यार्थी जीवन में आई.पी.एस. बनने के लिये तीन बातें आवश्यक हैं। तीनों बड़ी मौलिक बाते हैं- (I.P.S. - Innocent, Punctuality, Studious) यदि विद्यार्थी विद्या ग्रहण करना चाहता है तो उसमें ये तीन बातें होना चाहिये, जैसे मोक्षमार्गी के लिये तीन बातें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हैं ऐसे ही तीन बातें विद्यार्थी के लिये जरूरी हैं।

Innocent (निर्दोष-मासूम)-जब तक विद्यार्थी निर्दोष है, छलकपट रहित है गुरु के सामने भी निश्छल, माँ के सामने भी निश्छल मासूम है तो उसकी बुद्धि कोरे कागज जैसी है। जब तक निर्दोष है तब तक ज्ञान को ग्रहण करने में समर्थ है इसलिये बच्चे एक बार सुनकर भी ग्रहण कर लेते हैं और प्रौढ़ अवस्था में वृद्धावस्था में सौ बार पढ़ने पर वो चीज याद नहीं होती। एक महाराज जी थे, उन्होंने तत्वार्थ सूत्र के प्रथम अध्याय का सूत्र ''अर्थस्य'' इसे माला लेकर 108 बार पढ़ा, किन्तु कक्षा में जब गये तो सूत्र को भूल गये। जब बालक विद्यार्थी जीवन में है जब तक दिमाग में कोई कचड़ा नहीं भरा तब तक उसकी ग्रहण करने की शक्ति 'Catching Power' बहुत तेज रहती है, ज्यों ही दिमाग में यहाँ-वहाँ की बातें आ गयी तो क्षयोपशम घटता चला जाता है। विद्यार्थी के लिये निर्दोषता आवश्यक है क्योंकि जो दोषी होता है वह भयभीत होता, उसका साहस नहीं रहता। भयभीत को कोई भी एक आवाज में डरा सकता है, कहते हैं 'चोर के पाँव होते ही कितने हैं।'' वह सदैव डरा-डरा रहता है। दूसरी आवश्यक बात जो Innocent से भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण है।

Punctuality -यदि विद्यार्थी वास्तव में विद्या ग्रहण करना चाहता है तो समय का पाबंद होना बहुत जरूरी है। समय की पाबंदी उसे बुलंदियों तक पहुँचाने वाली होती है। **''जो समय के पाबंद होते हैं, अच्छे सपने उनकी मुट्ठी में बंद होते हैं।''** और जो समय की

कीमत नहीं करते हैं तो समय उनकी कभी कीमत नहीं करता। महादेव गोविन्द रानाडे एक जज थे, उनके विषय में आता है कि वे समय के इतने पाबंद थे कि जब वे घर से निकलते थे तब लोग उनसे अपनी घड़ी मिलाते थे, एक मिनट भी आगे-पीछे नहीं हो सकते। ऐसे ही इम्मैनुएल कांट वह भी जर्मन के एक दार्शनिक थे। समय के पाबंद थे, कहीं भी कोई भी बात हो वे अपने समय से चूकते नहीं थे। उनके आगमन पर लोग कहते थे कि यदि समय की कीमत समझना है तो इनसे समझिये।

राष्ट्र संत आचार्य श्री विद्यानंद जी महाराज के जीवन का प्रसंग है सभी जानते हैं कि वे समय के कितने पाबंद हैं। एक बार बचपन में उनके अध्यापक ने उन्हें डाँटते हुये कहा तुम बहुत आलसी हो तुम जीवन में कभी कुछ भी नहीं कर सकते। उन्होंने पूछा क्यों? अध्यापक ने कहा क्योंकि तुम्हारी नींद कभी समय पर नहीं खुलती, तुम देरी से सोकर उठते हो। सुरेन्द्र उपाध्ये को लगा यदि मेरे शिक्षा गुरु मुझसे ऐसे कह रहे हैं तो मुझे अपनी यह गंदी आदत सुधारनी होगी और उन्होंने अपने अध्यापक से कहा-श्रीमान् जी ! अब मैं समय पर उठूँगा, बोले क्या गारण्टी है? वे बोले कल से सबको जगाने की घण्टी मैं बजाऊँगा। तब से आज तक का दिन है वे अपने सभी कार्य समय पर प्रारंभ करते हैं और समय पर छोड़ते हैं। उनकी सभा भी समय से प्रारंभ होती है चाहे कोई आये या नहीं।

एक बार दिल्ली की मुख्यमंत्री माननीया शीला दीक्षित को उनकी सभा में मुख्य अतिथि के रूप में आना था। वे किसी कारण से लेट हो गयीं। जब वे पहुँची तब तक कार्यक्रम पूरा हो गया। आचार्य श्री ने कहा-हमारा आशीर्वाद है, सदैव मुस्कुराते रहिये। उन्हें बड़ी शर्मिंदगी महसूस हुयी मुझे वास्तव में टाईम से पहुँचना चाहिये। 1 अप्रैल 2002 में कमल सिनेमा पार्क में जब सभा प्रारंभ हुयी, ज्यों

ही उन्होंने घड़ी देखी, लगा की देर हो गयी उन्होंने माइक लिया कहा-ॐ नम: सबको आशीर्वाद और खड़े हो गये।

महानुभाव ये संस्कार जो उन्हें अपने विद्यार्थी जीवन में मिले वह आज तक देखने में आते हैं। विद्यार्थी जीवन की अगली बात है-

Studious - विद्यार्थी अध्ययनशील हो। लगन बहुत बड़ी चीज होती है। जो विद्यार्थी बचपन में बहुत मंद बुद्धि थे, जिन्हें एक-श्लोक याद करने में 3-4 घण्टे लग जाते थे, उन्होंने हिम्मत नहीं हारी और लगन से अध्ययन करते रहे। उनकी क्षमता इतनी बढ़ी कि अब एक घंटे में वे 30-30 श्लोक याद कर सकते हैं। असंभव कुछ भी नहीं है। यदि विद्यार्थी इन तीन बातों का ध्यान रखेंगे तो मैं समझता हूँ अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में समर्थ हो सकेंगे।

बल्ब के आविष्कारक 'अल्वा एडीसन' का नाम आपने सुना होगा। बचपन में वे जिस स्कूल में पढ़ते थे उस समय उनके अध्यापक ने एक पत्र लिखा और कहा अपनी माँ को दे देना। वे गये और माँ को पत्र दिया, माँ ने पत्र पढ़ा-एडीसन ने पूछा-माँ इसमें क्या लिखा है? तो वे बोलीं-इसमें लिखा है आपका बेटा इतना योग्य है कि उसकी योग्यतानुसार यह विद्यालय बहुत छोटा है, कृपया आप इसे किसी उच्च स्तरीय विद्यालय में शिक्षा प्रदत्त करायें। उसकी माँ ने उसे खूब पढ़ाया-खूब मेहनत की दिन रात उसके साथ जग-कर उसे पढ़ाती-लिखाती सिखाती और पुन: महान् वैज्ञानिक बनाया। जब उनकी माँ का निधन हो गया, तब उन्होंने अपनी माँ का बक्सा खोला और उसमें वही पत्र देखा जो स्कूल के अध्यापक ने दिया था-उन्होंने वह पत्र पढ़ा जिसमें लिखा था-तुम्हारा बेटा बहुत मूर्ख है, हम इसे नहीं पढ़ा सकते इसलिये इसे स्कूल से निष्कासित किया जाता है। इसे पढ़कर उसकी आँखों में आँसू आ गये।

महानुभाव ! ऐसे एक नहीं अनेक उदाहरण मिल सकते हैं। विद्यार्थी जो इन तीन चीजों को लेकर चले तो जीवन भर सद्शिक्षा, सद्ज्ञान, सद्कला ग्रहण कर सकता है। एक भी चीज कम होने पर सफलता हाथ से निकल जाती है।

अब देखते हैं एक व्यवसायी आई.पी.एस. कैसे हो सकता है।

(I.P.S.) Impressive, Peaceful, Softness अच्छे व्यवसायी के तीन लक्षण हैं जिसमें ये लक्षण हैं वह अच्छा व्यवसायी हो सकता है।

Impressive (प्रभावशाली)-सामने वाले ग्राहक पर अपना प्रभाव छोड़ने वाला हो। वस्तु कितनी भी अच्छी हो यदि बेचने वाला प्रभावक नहीं है तो वस्तु रखी रह जायेगी, बिकेगी नहीं। प्रभावक व्यक्ति घटिया वस्तु को भी बेच सकता है, और घटिया कहकर बेच सकता है। प्रभाव सबका अपना अलग-अलग होता है। दुकान सभी की एक साथ है वस्तुयें भी सबकी एक जैसी हैं किंतु एक दुकान पर ग्राहकों की लाइन लगी है वहीं दूसरा दुकानदार ग्राहकों की राह देख रहा है। एक दुकानदार के पास एक ग्राहक लौटकर आया कहा-तुम्हारी वस्तु बहुत खराब है, उसने कहा-अच्छा दिखाओ। वस्तु देखी कहा अरे ! ये बहुत अच्छी है, इसका प्रयोग ऐसे करो उस वस्तु के गुण-धर्म बताये वह ग्राहक संतुष्ट हो गया। वह ग्राहक भी खुश, दुकानदार भी खुश। वहीं दूसरा दुकान वाला कहता है-मैंने कोई गारण्टी थोड़े ही ली है, खराब हो गयी तो फेंक दे। वह ग्राहक सोचता है ठीक है, आज तो तुमने मुझे ठग लिया आगे से न मैं तेरे पास आऊँगा, न किसी को आने दूँगा।

व्यवसायी का ऐसा प्रभाव होता है कि वह सामने वाले को अपना बना लेता है। जिस दुकानदार में सामने वाले को अपना बनाने की कला है वही सफल है।

Peaceful (शांति)-जिस दुकानदार के चेहरे पर बल पड़ रहे हों, चेहरा रोता सा हो या क्रुद्ध हो तो ग्राहक नहीं ठहरता, आगे बढ़ जाता है। हाँ यदि कोई मजबूरी हो कि वह वस्तु आगे दुकानों पर न मिले तब एक अलग बात है, अन्यथा व्यक्ति वहीं जाना पसंद करता है जिस दुकानदार का व्यवहार शांतिपूर्ण हो। उसके वचन प्रिय हों। शांति भी व्यवसायी का एक लक्षण है।

Softness (नम्रवृत्ति) व्यवसायी का व्यवहार नम्र होना चाहिये, वाणी में मिठास होना चाहिये। व्यवहार में यदि मधुरता है तब निःसंदेह ग्राहक उसके पास आयेंगे। गुनौर में एक व्यक्ति हैं गणेशीलाल जी, जैन समाज के व्यक्ति हैं वे अपने मंदिर का काम पूजा-पाठ करके, साधुओं को आहारादि देकर अपनी दुकान पर पहुँचते थे, कई बार तो सामायिक के बाद भी पहुँचते थे। वे दुकान पर 2-3-4 घंटे के लिये ही जाते थे, शाम को पुनः घर आ जाते। 3-4 घंटे दुकान खोलते थे उनके आने से पहले और दुकान खुली रहने तक ग्राहकों की लाइन लगी रहती थी। वे कभी किसी से ऊँची आवाज में बोलते ही नहीं। भैया जो वस्तु तुझे चाहिये वो ले जा, ये वस्तु है, ये भाव है मोल-भाव करने की आवश्यकता नहीं है यदि तेरे पास पैसे नहीं है तो बाद में दे देना। मैंने वस्तु इस दाम में खरीदी थी, अब भले ही वस्तु के दाम बढ़ गये किंतु अब मैं ज्यादा-दाम में नहीं बेचूँगा। ग्राहकों को विश्वास हो गया ये बेईमानी नहीं करता। ये ज्यादा लेता नहीं, कम में समझौता करता नहीं।

महानुभाव ! दुकानदार की नम्रवृत्ति उसके व्यवसाय को बढ़ाने वाली होती है। जो वस्तु किसी सुगंधी वाले स्थान पर मिल रही है, वही वस्तु किसी बदबू वाले स्थान पर खरीदने क्यों जाओगे? यदि आपका रोग मीठी औषधि से ठीक हो जायेगा तो कड़वी औषधि क्यों खाओगे। ऐसे ही सद् व्यवसायी के तीन लक्षण होते हैं।

अगला देखते हैं सर्विस वाला व्यक्ति आई.पी.एस. कैसे हो सकता है।

सर्विस वाले व्यक्ति दो प्रकार के होते हैं एक कर्मचारी रूप में, एक अधिकारी रूप में। कर्मचारी जो अपने अधिकारी की आज्ञा में काम करता है, और अधिकारी Head of the department होता है। वह कैसा होना चाहिये। उसको आई.पी.एस. कैसा होना चाहिये।

कर्मचारी- **(I.P.S.)** (Ignore, Positivity, Service)

Ignore - (उपेक्षा करना) अधिकारी ने चार शब्द कटु कह दिये तो सुनकर निकाल दे, छोड़ो कोई बात नहीं अधिकारी हैं। यदि उस बात को अपने दिल पर ले जायेगा तो नौकरी ही नहीं कर पायेगा। अधिकारी तो कभी आँख दिखाता है, डाँटता है, काम करने पर भी और न करने पर तो न जाने क्या-क्या सुना देता है। यदि कर्मचारी सोचे कि मैं अधिकारी से सम्मान चाहूँ तो उससे अपेक्षा लेकर न चले, अपेक्षा लेकर चलेगा तो दु:खी ही दु:खी रहेगा। अधिकारी का ऐसा भी नहीं कि हमेशा डाँटता ही रहे कभी-कभी अधिकारी स्नेह भी करता है, स्थान भी देता है, प्रशंसा भी करता है किन्तु कर्मचारी कभी अपेक्षा न रखे कि मुझे मान सम्मान मिलेगा, वह अपना कर्त्तव्य करे किन्तु उपेक्षा भाव से करे।

Positivity (सकारात्मकता) - कर्मचारी सकारात्मक सोचे। कुछ कर्मचारियों की आदत होती है अपने बॉस में कमी निकालने की। ऐसा कर्मचारी अपने जीवन में पदोन्नति कर भी ले किन्तु आत्मशांति को प्राप्त नहीं कर सकता, किन्तु जो कर्मचारी उसके व्यवहार की उपेक्षा करके सकारात्मक सोचता रहता है किसी भी बात को उल्टा नहीं सोचता ऐसा कर्मचारी नि:संदेह अपने मनोरथों को पूर्ण करने में सफल हो जाता है।

Service (सेवा) -वह सर्विसमेन तो है ही, यदि सेवा ही नहीं करेगा, जिसके लिये वहाँ आया है, संकल्प लिया है तो कर्तव्यविहीन कहलाएगा अत: वह कार्य तो जरूरी है। ये तीन चीज जिसके जीवन में हैं वे कर्मचारी भी अपने आप में आई.पी.एस. हैं।

एक अधिकारी होता है वह कैसे आई.पी.एस. हो सकता है-(IPS) Intelligent, Politeness, Smart

Intelligent : (बुद्धिमान) अधिकारी को बुद्धिमान होना चाहिए यदि अधिकारी कर्मचारी से कम ज्ञानी है, तो कर्मचारी उसकी हँसी उड़ायेंगे। जो बॉस है बहुमुखी प्रतिभाशाली होना चाहिये। किसी स्कूल का अध्यापक यदि किसी विषय में कमजोर है तो सामान्य अध्यापक कहेगा-सर आप छोड़ो। यदि कोई शिष्य किसी आचार्य से अधिक योग्यता रखता है तो वह उस आचार्य के अण्डर में नहीं रहना चाहेगा। घर में भी व्यक्ति उसे आदर्श बनाता है जो किसी भी रूप में बड़ा होना चाहिये। तो बॉस में कर्मचारी से अधिक ज्ञान होना चाहिये। बुद्धिमान होगा तो नि:संदेह नियंत्रण करने में सफल होगा, मूर्ख है तो नहीं कर पायेगा। अधिकारी के लिये यह लक्षण अत्यंतावश्यक है।

Politeness (विनम्रता)-अधिकारी ऐसा नहीं कि मुख से अंगारे ही बरसते रहें। जितना बड़ा अधिकारी होता है उसे उतना विनम्र होना चाहिये। बड़ा होकर भी बड़प्पन नहीं आ पाया तो समझो खजूर का पेड़।

बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर।
पंथी को छाया नहीं फल लागे अति दूर॥

यदि अधिकारी बड़ा होकर बुद्धिमान भी है, विनम्र है तो उसके अधीनस्थ उसका सम्मान करेंगे, मन से उसे चाहेंगे। यदि क्रूरता आ गयी तो बस यही कहेंगे हमारा बॉस तो हिटलर है। भले ही अपराध

के भय से ऑफिस में उसकी बात मान भी लें, किन्तु बाहर निकलकर कहेगा अब मैं तुम्हारा अधीनस्थ नहीं और यदि बॉस नम्र है तो आज भी अध्यापक बाहर कहीं मिल जाये तो विद्यार्थी आज बड़े होकर भी उनके चरण स्पर्श करते हैं। बॉस मिल जायें तो सम्मान देते हैं। ऑफिस में काम करना एक अलग चीज है किन्तु बाहर दोनों का जीवन स्वतंत्र है। नम्रता से निःसंदेह सर्वत्र उसे मान-सम्मान मिलता है। ऊँची गद्‌दी पर कोई व्यक्ति बैठ जाये पर उसके योग्य मान-सम्मान न मिले तो वह व्यर्थ है।

Smart - स्मार्ट से आशय मात्र इतना ही नहीं कि शरीर से बना-ठना हो, अपितु उसका व्यक्तित्व भी सुंदर होना चाहिये, आकर्षक होना चाहिये। ऐसा नहीं कोई व्यक्ति बॉस तो बना है किन्तु वह बॉस होकर भी कर्मचारी से बद्‌तर हो। उसका रहन-सहन, उसकी वेश-भूषा उसकी वाणी यदि खराब होगी तो कोई कर्मचारी उसकी बात सुनने को भी तैयार नहीं होगा। कई बार फैक्ट्रियों के कई मालिक ऐसे होते हैं कि कर्मचारी से भी गंदे कपड़े पहनते हैं। अधिकारी को अपने बाह्य वेष-भूषा के साथ-साथ अंतरंग के व्यक्तित्व को भी निखारना चाहिये।

अब चलते हैं-एक सद्‌गृहस्थ के लिये आई.पी.एस. के क्या मायने हैं। उसमें तीन बातें क्या होनी चाहिये-

(I.P.S.) Ideal, Patience, Satisfaction.

Ideal - (आदर्शवान्) सद्‌गृहस्थ सद् तब कहलाता है जब वह आदर्श हो। उसकी श्रद्धा उसका ज्ञान, चर्या आदि सब आदर्शयुक्त हो। यदि वह आदर्शवादिता को लेकर चलता है, इसका आशय है कि उसके जीवन में कोई न कोई आदर्श है। वे ऐसे थे-मैं भी ऐसा बनूँगा। उनकी अच्छाईयों को ग्रहण करने के लिये उन्हें अपना आधार मानते

हैं तब नि:संदेह कोई प्रतिकूलता नहीं होती। एक राहगीर Mile Stone को देखकर चलता है तो मंजिल तक पहुँच ही जाता है। वह आदर्श स्वयं तब बनता है जब स्वयं किसी को अपना आदर्श बनाता है।

Patience (धैर्य)–गृहस्थ को यदि अपनी गृहस्थी चलानी है तो उसके जीवन में धैर्य होना चाहिये। यदि धैर्य नहीं है तो सुबह से लेकर शाम तक खटपट होती ही रहेगी। जब तक विवाह नहीं हुआ तब तक पिता-पुत्र में, भाई-बहिन में खटपट हो रही है, विवाह के बाद पति-पत्नी में खटपट होती है। विवाह के बाद पहले तू ही-तू ही होती है, कुछ वर्ष बाद मैं ही-मैं ही होती है और पुन: जीवन भर तू तू-मैं-मैं होती रहती है। किन्तु धैर्य होगा तो यह परिस्थिति उत्पन्न नहीं होगी।

एक बार एक युवा ने विवाह होने के पूर्व सलाह ली कि मुझे क्या करना चाहिये? मैं शादी करूँ या संत बनूँ। किसी ने कहा-कबीरदास जी के पास चले जाओ, उनसे पूछो मैं क्या करूँ। वह गया, मध्याह्न काल का समय था कबीरदास जी आँगन में बैठे थे। युवा ने जाकर कहा-मैं आपसे कुछ सलाह लेने आया हूँ-बोले पूछो-बोला आप मुझे ऐसी नेक सलाह दो जिससे मेरा जीवन सुखी हो जाये, मैं साधु बनू या विवाह करूँ। कबीर जी थोड़ी देर मौन रहे, पुन: अपनी पत्नी को आवाज लगायी-सुनोऽऽ सुनती हो, पहले जमाना था, परम्परा थी पति-पत्नी का, पत्नी-पति का नाम नहीं लेती थीं आज पत्नी भी अपने पति का नाम ऐसे लेती है जैसे इनके नौकर हों-जे.के., पी.के. आर.के.। सम्मान की भाषा तो बहुत दूर रही श्री-श्री लगाना भी भूल गये। उस समय कबीर ने भी अपनी पत्नी का नाम लेकर नहीं बुलाया।

वो बाहर आयी-पूछा क्या काम है। वे बोले एक काम करो दीपक जलाकर ले आओ, वह अंदर गयी और क्षणभर में दीपक ले

आयी। पुनः देखा अतिथि आये हैं तो अंदर जाकर दो दूध के गिलास लायी और रखकर चली गयी। दोनों ने दूध पीया। कबीर जी ने तो पूरा दूध पी लिया, किन्तु युवा ने एक घूँट ही पीया था कि थू-थू करने लगा। बोला अरे इसमें तो इतना सारा नमक है, इसे कोई कैसे पी सकता है। महात्मा जी मैं यहाँ अपना आतिथ्य कराने नहीं आया-जो बात पूछने आया था उसका उत्तर दे दो।

महात्मा बोले उत्तर तो मैंने दे दिया, व्यक्ति बोला दे दिया पर मुझे समझ नहीं आया। महात्मा ने कहा चलो कोई बात नहीं अभी समझाता हूँ, दोनों खड़े होकर एक साधु के पास पहुँच गये, वे साधु पहाड़ पर अपनी साधना में लीन थे। कबीर जी ने आवाज लगायी, महात्मा जी आप नीचे आ जाओ मैं आपके दर्शन करना चाहता हूँ। वे महात्मा जी नीचे आ गये, दर्शन देकर चले गये। अभी वे पहुँचे भी नहीं कि उन्होंने पुनः आवाज लगायी महात्मा जी थोड़ी कृपा करो नीचे आ जाओ कुछ पूछना है-कुछ पूछा। पुनः वे जवाब देकर चले गये। थोड़ी देर बाद फिर आवाज लगायी-वे पुनः आये। हर बार चेहरे पर वही मुस्कुराहट और वे उत्तर देकर चले गये।

यह सभी दृश्य वह युवा देख रहा था, कबीर ने उससे कहा अब तुम्हें समझ आ गया वह बोला नहीं अभी भी नहीं आया। बोले ठीक है मैं तुम्हें शब्दों में ही समझाये देता हूँ। यदि शादी करना हो तो ऐसी गृहणी लाना जो तुमसे क्यों-क्या न पूछे। मैंने दीपक जलाकर लाने को कहा उसने पलट कर एक बार भी नहीं पूछा कि मध्याह्न में इस सूर्य के प्रकाश में दीपक की क्या आवश्यकता है। उसने प्रसन्नतापूर्वक चेहरे पर किसी प्रश्न चिह्न के बिना मेरे संकेत का पालन किया। ऐसी सुसंस्कारवान् कन्या मिले तो विवाह करना।

वह बोला-महात्मा जी यह कैसे संभव है-वे बोले संभव ऐसे होगा कि ताली एक हाथ से नहीं दोनों से बजती है। तुमने दूध पीया

एक घूँट पीकर अलग कर दिया और मैंने वही दूध पूरा पी लिया, दूध में शक्कर के स्थान पर नमक पड़ गया था किन्तु मैंने शिकायत नहीं की, यदि तुम्हारे जीवन में इतना धैर्य हो तब तो विवाह करना उचित है क्योंकि गृहस्थ जीवन चलाने के लिये धैर्य की आवश्यकता है। साधु बनना बच्चों का खेल नहीं है तो गृहस्थी चलाना भी बच्चों का खेल नहीं है।

एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को सहन नहीं कर पाता। एक गृहस्थी में एक माता-पिता अपने 9-10 बच्चों को संभाल लेता है, पूरे परिवार का समायोजन कर लेता है।

मुखिया मुख सो चाहिये, खान-पान को एक।
पाले-पोसे सकल जग तुलसी सहित विवेक॥

जैसे मुख एक खाता दिखायी देता है किन्तु जो कुछ भी खाता है वह पूरे शरीर में पहुँचता है। गृहस्थी चलाने के लिये परम विवेक की आवश्यकता होती है। और साधु बनो तो ऐसे कि कितनी भी, कैसी भी परिस्थिति उत्पन्न हो उसके मन में क्रोध की रेखा भी न खिंच पाये। उसके चेहरे पर प्रसन्नता होनी चाहिये। अब तुम निर्णय करो तुम्हें क्या बनना है।

Satisfaction (संतोष) 'यथा लब्ध संतोष' यदि गृहस्थ को शांति चाहिये तो सबसे अच्छा उपाय है संतोष। संतोषी सदा सुखी। तीन में से एक भी चीज कम रह जाती है तो नि:संदेह उस गृहस्थ का जीवन आनंददायक नहीं होता, ऐसा लगता है नरक तुल्य बन गया हो। इन बातों की अपने अंदर खोज करें, यदि नहीं हैं तो उत्पन्न करें। जैसे किसान अपने खेत में फसल को उत्पन्न करता है ऐसे ही आप भी यदि ये तीन बातें अपने जीवन में उत्पन्न कर लें तो खुशियों की लहराती फसल आपके जीवन में होगी, सुखद व शांतिमय जीवन की प्राप्ति होगी।

अब देखते हैं एक भक्त कैसे आई.पी.एस. हो सकता है उसके जीवन में क्या होना चाहिये।

(I.P.S.) सच्चा भक्त आपकी भाषा में वो है जिसकी श्रद्धा देव-शास्त्र-गुरु के प्रति हो। भगवान आज वर्तमान काल में है नहीं तो-Idol of God, Precepter, Scriptures

भगवान की मूर्ति, उपदेशक अर्थात् गुरु और शास्त्र ये तीन जिसके पास हैं वह आई.पी.एस. है।

Idol of God (भगवान की मूर्ति) जो भक्त भगवान के दर्शन नहीं करता है तो वह अपने विकारों का शमन नहीं कर सकता। भगवान के दर्शन नहीं करता है तो अपने परमात्म स्वरूप को नहीं पहचान पाता है। जिसने कभी जीवन में अपने आराध्य के दर्शन नहीं किये वह जीवन में कभी भी आराधक नहीं बन सकता। जीवन में आवश्यक है जिसको भगवान मानता है उनकी मूर्ति सामने होनी चाहिये। वह मूर्ति नहीं है तो उस भक्त का जीवन शून्य हो जायेगा।

क्योंकि मूर्ति बोलती नहीं अब कैसे समझें हमें क्या करना है, क्या नहीं तो उस भक्त को आवश्यकता है-

Precepter (उपदेशक) जीवन में एक गुरु की परम आवश्यकता होती है जो गुरु उसे चलना सिखाये। जैसे माता-पिता अपने बच्चों को अँगुली पकड़ कर चलना सिखाते हैं ऐसे ही गुरु, शिष्य व भक्तों को सिखाते हैं कि ऐसा नहीं ऐसा करो। जिसके पास गुरु हैं उसे जीवन में कोई चिन्ता नहीं, जिसके पास गुरु नहीं वह जीवन भर भयभीत रहता है। जीवन में गुरु होने पर निश्चिंत रहता है। उस भक्त को कोई दु:ख नहीं जिसकी रक्षा करने वाले गुरु हों।

Scripture (शास्त्र) भगवान की मूर्ति भी है, गुरु भी हैं किन्तु गुरु एक बार शिक्षा देते हैं, दो बार देते हैं अब बार-बार कहाँ से अपने

कर्त्तव्य का बोध करें। जीवन में तीसरी चीज शास्त्र होना चाहिये। गुरु महाराज आ. श्री विद्यानंद जी ने जब 17 फरवरी 2002 को उपाध्याय पद दिया तब कहा-बेटा ! जैसे बेटा माँ की गोद में रहता है तो रोता नहीं है, भूखा-प्यासा भी हो तब भी आनंद से खेलता है, माँ बेटे को गोदी से उतार देती है तो बेटा रोता है। तुम भी जीवन में माँ की शरण को मत छोड़ना अपने पास प्रयास करना अधिक से अधिक समय तक जिनवाणी माँ को रखना, रात को सोते समय भी शास्त्र, डायरी और पेन अपने सिराहने रखकर सोना क्योंकि कब नींद खुले कब तुम्हारे मन में विकल्प आये तो तुरंत ही एक शब्द देखकर के चिंतन करने बैठ जाओगे तो तुम्हारे मन को शांति मिलेगी। शास्त्र एक ऐसा रक्षा कवच है जो अचानक आने वाली विपत्तियों से भी बचाने वाला होता है। ये तीन बातें आवश्यक होती हैं।

अब देखते हैं वृद्ध पुरुष को क्या करना चाहिये। वृद्ध पुरुषों के लिये हम कई बार कहते हैं-नौन, मौन, कौन इन तीन को ध्यान रखना चाहिये। नौन का आशय-सब्जी में नमक ज्यादा है या कम कुछ नहीं कहना चुपचाप खालो, ज्यादा से ज्यादा मौन रहो कम से कम बोलो और कौन अर्थात् ज्यादा रोका-रोकी-टोका-टोकी मत करो जो हो रहा है शांति से होने दो। किन्तु वृद्ध आई.पी.एस. कैसे हैं-

(I.P.S.) Introvert, Promote, Sacrifice

Introvert (अन्तर्मुखी) वृद्धों को अन्तर्मुखी होना चाहिए। बहुत दुनिया देख ली, बेटा क्या कर रहा है? वह कहाँ जा रही है? कौन क्या कर रहा है? ताँक-झाँक मत करो, तुम्हारा जमाना निकल गया। अपना सम्मान घर में चाहते हो तो ये आदत छोड़ो जब ये ही देखते रहोगे तो अपनी आत्मा को कब देखोगे ? अब अन्तर्मुखी बनो। मुझे परमात्मा की भक्ति करना है, जाप करना है, चिंतवन करना है यह सब देखो। बाहर देखते रहोगे तो ध्यान रखना वृद्धावस्था में बहुत दु:ख मिलेगा इसलिये वृद्ध के लिये अन्तर्मुखी होना जरूरी है।

Promote (प्रेरक)-वह वृद्ध दूसरों को प्रेरणा देने वाला होना चाहिये। वृद्ध अवस्था में घर में रहकर बच्चों को चाहे कहानी सुनाकर, किसी का दृष्टांत सुनाकर या अपना अनुभव सुनाकर प्रेरणा दो जिससे वे तुमसे कुछ सीख सकें। दादा बन गये तो अँगुली पकड़ कर मंदिर ले जाओ या अभिषेक करना सिखाओ चाहे कुछ अच्छी पुस्तकें उन्हें लाकर दो। चित्र कथाओं आदि के माध्यम से जो वे पढ़ेंगे सीखेंगे तो उनमें ऐसे संस्कार पड़ जायेंगे कि यावज्जीवन भूल नहीं पायेंगे और उनसे भी लोग सीखेंगे। वृद्धों की अच्छी प्रेरणा जीवन के पथ को सुगम बनाने वाली होती हैं।

Sacrifice (त्याग)-वृद्धावस्था में सन्यास ग्रहण करो। समस्त भौतिक जीवन का त्याग कर, जीवन का कल्याण करो। जिस वृद्ध के जीवन में ये तीन बातें आ गयीं तो उस वृद्ध को कौन दु:खी कर सकता है। बहुत अच्छी तरह से उसकी वृद्धावस्था व्यतीत हो सकती है। इन बातों से वृद्ध भी आई.पी.एस. हो सकता है, उसके जीवन की भी सुरक्षा हो सकती है।

अब अंत में साधु भी अपने आप में आई.पी.एस. है। क्योंकि पुलिस वालों की ड्यूटी 24 घण्टे मानी जाती है। वह छुट्टी ले तो सकते हैं, किन्तु उन्हें छुट्टी लेने का हक नहीं है। 24 घंटे में कभी भी कॉल आ सकती है आपको जाना ही पड़ेगा, चाहे घर में शादी का माहौल हो या पिता की लाश सामने पड़ी हो उसे छोड़कर जाना ही पड़ता है। बहुत सख्त ड्यूटी होती है चाहे किसी केस में अस्पताल बंद हो जायें, स्कूल बंद हो जायें सर्दी-गर्मी ज्यादा पड़ रही हो, चाहे कर्फ्यू लग जाये किन्तु थाने में कभी ताले नहीं पड़ते।

साधु की ड्यूटी भी 24 घंटे रहती है। मंदिर को खोलने-बंद करने का समय निश्चित कर दिया जाता है, जो पहले से आ गये वे बाहर बैठे रहें, जो देरी से आया है तो मंदिर बंद हो गया किन्तु साधु की ड्यूटी भी 24 घंटे मानी जाती है पर बाहर वाले के लिये नहीं,

अपने स्वयं के लिये। चाहे वह सो रहा है तब भी जाग्रत है। जाग्रत है तब भी जाग्रत है। आहार ले रहा है तब भी वह साधु साधना में संलग्न है तब भी समता का भाव, साधना कर रहा है तब भी समता का भाव, उपदेश दे रहा है तब भी समता का भाव, अध्ययन में लीन है तब भी समता का भाव, 24 घंटे उसकी साधना है। तो साधु के लिये तीन बातें आई.पी.एस. के संबंध में क्या हो सकती है।

(I.P.S.) Intropaction, Purity, Spirituality

Intropaction (आत्म निरीक्षण) वह साधु निरंतर आत्मा का निरीक्षण करता रहे। आत्मा को देखता रहे, यदि आत्मा को देख रहा है तो साधुता जीवंत है और जब आत्मा को देखना भूल गया तो साधुता दूर हो जायेगी। साधुता एक ऐसी चीज है जिस पर निरंतर निगाह रखी जाती है। जैसे महिलायें अनाज सुखा रहीं हो तो बार-बार देखती हैं कहीं पक्षी न आ जायें। माँ ने लड्डू बनाया हो और माँ बालक से कहे खेल करके आ जाओ फिर लड्डू मिलेगा तो बालक बार-बार आयेगा, झाँकता रहेगा कि कब लड्डू मिलेंगे। साधु भी निरन्तर आत्मा का निरीक्षण करता है बाहर के जगत में रहता हुआ भी आत्मा को भूलता नहीं, आत्मा को देखता रहता है। आत्मदृष्टा उसका स्वभाव है। दूसरी बात-

Purity (पवित्रता) उसके जीवन में पवित्रता होनी चाहिये। तपस्या भले ही कम हो किंतु जीवन उसका पवित्र है तो गृहस्थ भी साधु है। जीवन में पवित्रता नहीं छल-कपट मलिनता है, अहंकार है, क्रोध है, तो साधु भेष से कोई साधु नहीं होता। वह जितना-जितना अन्तर्मुखी होगा उतनी पवित्रता मन में आती जायेगी, पवित्रता बढ़ती चली जायेगी, उस पवित्रता को कोई रोक नहीं सकता। अंतरंग से जो विशुद्धि बढ़ती है वह अकथ्य है। पवित्रता भी उसकी तपस्या है।

Spirituality (आध्यात्मिकता) बाह्य जगत-व्यवहार को छोड़कर आध्यात्मिक बने। बहिर्जगत् में सुबह से शाम तक न लगा रहे। वह

केवल बाह्य जगत में जीने वाला न हो आध्यात्मिकता को साथ लेकर चले, तभी साधु साधुता का भान कर सकता है ।यदि इन तीन में से किसी एक को भी छोड़ दे तो वह आई.पी.एस. नहीं होता। साधु तन के तो बहुत हैं मन का साधु तो कोई बिरला ही हो सकता है मन से साधु होना ही साधु है। ये बातें साधुता के लिये आवश्यक हैं।

महानुभाव आई.पी.एस. इस संबंध में आपने सुना। **'I am permanent Soul'** 'मैं शाश्वत आत्मा हूँ।'

आई.पी.एस. का मुख्य अर्थ हम यही समझें। इतना दिमाग में जरूर रखना है। मैं शाश्वत आत्मा हूँ। शाश्वत अर्थात् मैं पहले भी था, आज भी हूँ, कल भी रहूँगा। ये मेरा तन शाश्वत नहीं है, मेरे वचन शाश्वत नहीं हैं, मेरा मन शाश्वत नहीं है। मेरे कर्म भावकर्म-नोकर्म शाश्वत नहीं हैं। जो भी दशायें प्राप्त की हैं इस आत्मा ने वह शाश्वत नहीं हैं। मैं तो शाश्वत आत्मा हूँ मेरा स्वभाव शुद्धात्मा है। शक्ति की अपेक्षा मैं आज भी शुद्ध आत्मा हूँ किन्तु उसे मुझे पुरुषार्थ के द्वारा शुद्ध करना पड़ेगा। आपसे बस यही कहना है आप अपनी आत्मा को जानो, उसे पहचानो तभी आप आरक्षी हो सकते हैं, सेवक हो सकते हैं अपनी आत्मा के। जो अपनी आत्मा को नहीं जानता है कि मैं शाश्वत आत्मा हूँ वह कभी भी अपनी आत्मा का आरक्षी नहीं हो सकता, न सेवक हो सकता है।

आप सभी चिंतन करें कि किसके योग्य कौन सी तीन बातें हैं, हम अपने आप में कैसे आई.पी.एस हैं। हो सकता है इन बातों का चिंतन करने से आपके जीवन में कुछ परिवर्तन आये। पुलिस के कहने से परिवर्तन आये न आये किंतु साधु का संकेत जीवन को अवश्य बदल देता है यदि हम बदलना चाहें तो। आप सभी का मंगल इन्हीं सद्भावनाओं के साथ अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देता हूँ।

।। ''श्री शांतिनाथ भगवान की जय'' ।।

७. महत्त्वपूर्ण है 'ठहराव'

लघुता से प्रभुता मिले, प्रभुता से प्रभु दूर।
चींटी ले शक्कर चली हाथी के सिर धूल॥

वास्तव में लघु बनकर ही प्रभुता निष्पन्न की जा सकती है। कोई प्रभुता को पहले से ही मान लेता है कि मैं प्रभु हूँ तो उसकी प्रभुता कभी शाश्वत नहीं रहती। पर्वत की चोटी पर चढ़ा तो जा सकता है किन्तु ठहरा नहीं जा सकता, यदि नीचे आधार न हो तो। हम ऊँचाईयों पर चढ़ें, खूब ऊँचे पहुँचें, खूब ऊँचे पहुँचें हमारा सिर सुमेरु पर्वत के ऊपर निकल जाये किन्तु शर्त हमारी ये है हमारे पैर जमीन पर टिके होना चाहियें। चील की तरह से ऊपर उड़कर नीचे गिरना उचित नहीं है, जमीन पर पैर रखकर कितने भी ऊपर पहुँच जाओ, तुम्हें खतरा नहीं है।

महानुभाव! आचार्य गुणभद्र स्वामी जी ने 'आत्मानुशासन ग्रंथ' में लिखा है कि-पूर्व में सत्य को कहने वाले लोग बहुत थे, सुनने वाले कम थे, ग्रहण करने वाले और कम। बाद में मध्यम समय आया सत्य को कहने वाले थे, सुनने वाले थोड़े कम हो गये, ग्रहण करने वालों का अभाव सा हो गया। फिर समय आया कि सत्य को कहने वाले और कम हो गये, सुनने वाले और कम हो गये, ग्रहण करने वाले भी न के बराबर हैं। तत्त्व की बात करने वाले बहुत कम लोग हैं, केवल श्रावक के मन को रंजायमान कर देना धर्म का मर्म नहीं है, धर्म का मर्म तो ये है कि श्रावक की आत्मा में चिपके राग और द्वेष को पिघला कर निष्कासित कर सकें, वह वास्तव में विद्वान की वाणी होती है। कपड़ा, जिसमें खूब चिकनाई लगी है उसका ठंडे पानी से यूँ मैल नहीं दूर होगा, उसकी गंदगी को दूर करने के लिये तो गर्म पानी चाहिये, क्षारीय पदार्थ चाहिये उसके उपरांत भी यदि नहीं

निकलता तो लकड़ी की मुगरिया से कूटना भी पड़ेगा उसके बाद ही वह मैल निकल सकता है।

आत्मा में अनादिकाल से बसा मैल-राग-द्वेष, मोह की वासना ऐसे थोड़े ही निकलने वाली है। मोह के कारण व्यक्ति अपने शरीर को ही आत्मा मानकर बैठ गया है, पर पदार्थों में आत्मबुद्धि करके बैठ गया है और दौड़ता चला जा रहा है-दौड़ता चला जा रहा है उस वस्तु को पाने के लिये जो वस्तु उसके अंदर है। कस्तूरी का मृग जंगल में दौड़ता चला जा रहा है, जिसकी नाभि में कस्तूरी है क्या उसे कहीं जंगल में कस्तूरी मिलेगी? वह सुगंधी के पीछे-दौड़ता है, ठहरता नहीं है।

संसारी प्राणी भी तो दौड़ते चले जा रहे हैं, ठहरने का समय उनके पास नहीं है। कोई व्यक्ति कहे-भाई गाड़ी रोक ले टायर पंचर हो गया है, मेरे पास समय नहीं है, भाई घोड़े को रोक ले उसके पैरों में चोट है, मेरे पास समय नहीं है। आज व्यक्ति के पास ठहरने का समय नहीं है, वह सुबह से शाम, शाम से रात-दिन बस दौड़ता जा रहा है। ये भागादौड़ी, हाथा-जोड़ी, माथाफोड़ी सब जगह चल रही है। सुबह से शाम तक व्यक्ति अपनी ही धुन में भागता जा रहा है, कुछ नहीं तो कहीं न कहीं अपना बेशकीमती दिमाग खराब कर रहा है चाहे मोबाइल के सहारे या नेट के सहारे या अन्य किसी माध्यम से, अर्थ कुछ भी नहीं निकलता अथवा हाथा जोड़ी-किसी के हाथ जोड़े, किसी के पैर पड़े अपना काम सिद्ध हुआ अब तुम जाओ मैं तुम्हें जानता ही नहीं।

महानुभाव ! इन सब बातों से जीवन जीवंतता को प्राप्त नहीं होता। जीवन धक्का देकर एक जगह खिसक तो जाता है, किंतु हमें जीवन को खिसकाना नहीं है जीवन को सफल और सार्थक करना है। दौड़कर के सब कुछ नहीं पाया जा सकता और सत्यता तो ये है दौड़ने

में तो छोड़ा ही जाता है, पाया नहीं जाता। यदि दौड़ना है तो छोड़ते जाओ-छोड़ते जाओ। भार से युक्त व्यक्ति दौड़ने में असमर्थ होता है जितना भार कम होता है उतना ही दौड़ता चला जाता है किंतु प्राप्त करने के लिये तो थोड़ा ठहरना पड़ता है। जमीन में तुम्हारा 100-500 का नोट गिर जाये तो तीव्र दौड़ के साथ उसे प्राप्त नहीं कर सकते, उसे उठाने के लिये तो ठहरना पड़ेगा। यदि आपकी गाड़ी स्पीड में चलती चली जा रही है, कदाचित् गाड़ी को पीछे करना पड़े तो गाड़ी को पहले रोकना पड़ेगा पुनः पीछे की जा सकती है।

हमारी गाड़ी यदि संसार के मार्ग पर, संसार की पटरियों पर जिन पटरियों का नाम है 'राग और द्वेष', जिस पर बिना स्टेशन वह दौड़ती चली जा रही है, कहीं रुकने का नाम ही नहीं और कहीं पहुँच नहीं रही। आप पूछेंगे जब दौड़ रही है तो पहुँच क्यों नहीं रही? पहुँचेगी नहीं क्योंकि गाड़ी जो दौड़ रही है, वह सर्किल में दौड़ रही है, कोल्हू के बैल की तरह दौड़ रही है। जो नदी किसी सर्किल में घूम रही है वह क्या किसी समुद्र में पहुँच सकती है? नहीं। हमारी दौड़ भी बस मोह और राग के वशीभूत होकर दौड़ रही है।

आज किसी को अपना माना, कल किसी को अपना माना, संसार में अनंत जीव हैं अनंत वस्तुयें हैं क्रम-क्रम से सबको अपना मानते चले गये किन्तु खुद को आज तक अपना नहीं माना क्यों? क्योंकि खुद को जाना ही नहीं, पहचाना ही नहीं। जब तक खुद को जानेंगे ही नहीं, पहचानेंगे ही नहीं तो खुद को अपना मानेंगे कैसे? सबके पास नेत्र हैं पर वे आँखें अनादि काल से बाहर के दृश्य को देखती हैं अंदर के दृश्य को देख नहीं पाती, जिसको देख नहीं पाती। जान नहीं पाती उसे मानेंगे कैसे।

महानुभाव ! आज सभी दौड़ रहे हैं, विद्यार्थी दौड़ रहा है कि मैं खूब याद करूँ, अच्छे नंबरों से पास हो जाऊँ। एक किसान दिन-रात खेत में काम कर रहा है, व्यवसायी सुबह से शाम तक दुकान खोलता

है रात को 12 बजे तक बंद करता है, उद्योगपति के उद्योग में तो दिन-रात कार्य चल रहा है। कोई धन कमाने के लिये दौड़ रहा है, कोई यश कमाने की चाह में दौड़ रहा है, कोई ख्याति पूजा-लाभ के लिये दौड़ रहा है तो कोई आरोग्य लाभ के लिये दौड़ रहा है, किंतु दौड़-दौड़ कर ये सब कुछ नहीं मिलता है, दौड़-दौड़ कर तो सब छूट जाता है। प्राप्त करने के लिये थोड़ा ठहरना जरूरी है।

ठहरो ! चलने से पहले, पहले पूछ लो तुम्हें कहाँ जाना है, अन्यथा लौटकर आना पड़ेगा। बुरी आदतों को जल्दी से सुधार लो, **अपनी गलती और बुरी आदत जितनी जल्दी सुधार ली जाये उतना अच्छा होता है,** बाद में ज्यादा आगे निकल जाओगे तो लौट भी न पाओगे। पहले ठहर जाओ थोड़ा पूछ लो। ठहरना इसलिये जरूरी है क्योंकि हम पाना चाहते हैं। यदि हम पाना नहीं चाहें तो कोई बात नहीं, दौड़ना ही दौड़ना चाहते हो तो दौड़ते रहे कोल्हू की बैल की तरह से। कोल्हू का बैल दौड़ता ही जाये तो दौड़ते दौड़ते न तो पानी पी सकता है और न चारा खा सकता है इसके लिये उसे विश्राम करना पड़ेगा, यदि उसे कुछ ग्रहण करना है तो विश्राम करना ही पड़ेगा।

आचार्य वीरसेन स्वामी जी ने 'धवला' जी में कई जगह चर्चा की है, 'अनादि काल से तुम दौड़ते चले आ रहे हो, सम्यक्त्व को प्राप्त करना है तो 'विस्संतो' थोड़ा विश्राम लो। तब सम्यक्त्व की भूमिका बनेगी, दौड़ते-दौड़ते सम्यक्त्व की भूमिका नहीं बनेगी। यदि सम्यक्त्व प्राप्त कर लिया तो 'विस्संतो' तत्त्व का चिंतवन करो, तभी वैराग्य होगा। यदि वैराग्य हो गया तो 'विस्संतो' बुद्धि पूर्वक संकल्प कर संयम ग्रहण करो, उसके उपरांत श्रेणी चढ़ना है, उपशम श्रेणी चढ़ी-गिर गये, फिर चढ़े फिर गिरे अन्तर्मुहूर्त के लिये फिर 'विस्संतो' विश्राम करो, उसके बाद फिर क्षपक श्रेणी माड़ पाओगे। ऐसा नहीं

कि लगातार श्रेणी चढ़ता चला जाये। विश्राम बहुत जरूरी है। बिना ठहरे तो कोई पार हो ही नहीं सकता।

महानुभाव ! यदि किसी व्यक्ति के हाथ में दर्पण है, वह दर्पण को हिलाता रहे तो उसे अपना चेहरा साफ दिखाई नहीं देगा, या दर्पण तो टंगा है किंतु वह झूले पर झूला झूल रहा है तो क्या उसे अपना चेहरा स्पष्ट दिखेगा ? नहीं। क्योंकि दोनों का ठहरना जरूरी है। दर्पण स्थिर हो सकता है किन्तु पहले तुम अपना चेहरा स्थिर करो। कोई कहे समय नहीं है, तो समय तो निकालना पड़ेगा। तुम्हारे पास दौड़ने का समय है यदि तुमने अभी समय नहीं निकाला तो तुम्हारी दौड़ व्यर्थ भी है, अनर्थकारी भी हो सकती है, इसलिये ठहरो।

तितली जब तक उड़ती रहती है, भौंरा-मधुमक्खी जब तक उड़ते रहते हैं तब तक पराग को प्राप्त नहीं कर पाते। पराग प्राप्त करना है, मधुर रस प्राप्त करना है तो उसे ठहरना ही पड़ेगा। बिना ठहरे उड़ते-उड़ते आकाश से प्राप्त नहीं कर सकते उसे ठहरना ही पड़ेगा पुष्प पर बैठकर ही पराग ले सकती है। किसी भी इलेक्ट्रॉनिक वस्तु को लगातार काम में लेने से वह भी खराब हो जाती है और चार्ज करनी पड़ती है, ऐसे ही हमारी बैटरी भी डिस्चार्ज हो जाती है इसलिये विश्राम करना जरूरी है। प्रकृति ने भी कहा तुम ऐसे विश्राम नहीं करोगे चलो रात ही बना दी अब तो विश्राम करोगे। दिन में कार्य कर रहे हो तो रात में विश्राम करो। यदि रात न होती तो व्यक्ति हर समय काम करता सो नहीं पाता, बीमार पड़ जाता मृत्यु हो जाती। पहले युद्ध चलते थे सूर्यास्त के बाद विराम, विश्राम करो, नहीं तो आप युद्ध कर ही न सकोगे।

विश्राम सबके लिये जरूरी है। तीव्रगति से बहता हुआ जल इतना लाभदायक नहीं होता जितना लाभदायक बंधा हुआ जल है या सीधा चलता हुआ जल है। दरिया कहीं बंधा हुआ है उस में से नहर

निकालकर अपने खेत की सिंचाई की जा सकती है और जो नदी तीव्र गति से बह रही थी, वहाँ से पानी निकालने की कोशिश की नहर निकाली और यदि नदी का वेग उधर ही आ गया तो बाढ़ का रूप ले सकता है।

इंसान और दरिया जब तक सीधे चलते हैं तब तक सबको अच्छे लगते हैं सबके लिये सुखद होते हैं। **इंसान और दरिया जब टेढ़े-मेढ़े चलते हैं तो स्वयं के लिये भी हानिकारक होते हैं दूसरों के लिये भी हानिकारक होते हैं** और यदि ये अपनी क्षमता से ज्यादा तीव्र गति प्राप्त कर लें तो दूसरों के लिये भयावह हो जाते हैं, इसलिये इंसान व दरिया अपनी सीमा में रहें। वाहन की गति यदि सीमा में है तो खतरा कम रहता है ज्यादा हो जाती है तो समझो गये, इसलिये व्यक्ति यदि अहंकार में आता है तो माता पिता कहते हैं बेटा-थमो ! उड़ो मत ! उड़ोगे तो नीचे टपक जाओगे। थमो माने सोचो।

केवल कार्य को करते ही करते मत रहो, सोचो, ठहरो। ठहर करके तुम्हें कुछ एनर्जी प्राप्त होगी। तुम सोच रहे हो वह सोच बदलेगी। हो सकता है तुम गलत कर रहे हों, ठहरोगे तो गलत करना रुक जायेगा वह कार्य छोड़ दोगे। आवेश में कभी भी कोई निर्णय नहीं लेना चाहिये, आवेश में कभी भी किसी को वचन नहीं देना चाहिये। कषायों के आवेश में लिया गया निर्णय तुम्हें दीर्घकाल तक दु:ख देगा। प्रेम आदि का आवेश है तो उसमें दिया गया वचन दशरथ की तरह तुम्हें रुलायेगा। इसलिये आवेश में कभी कोई निर्णय मत लो, किसी को वचन मत दो। सहजता में रहो सहजता मतलब ठहर जाना।

एक युवा लकड़हारा अपनी कुल्हाड़ी लेकर किसी सेठ के यहाँ काम की तलाश में गया। सेठ ने कहा-मेरा बगीचा सूख गया है सूखे पेड़ों को काट लो, उन पेड़ों के छोटे-छोटे टुकड़े करना है। लकड़हारे ने कुल्हाड़ी लेकर पेड़ को काटना प्रारम्भ किया, वह काटता जा रहा है। उसने पहले ही दिन सुबह से लेकर शाम तक लगभग 10-12 सूखे

पेड़ काट दिये। दिन भर लगा रहा जब थककर चूर हो गया तो सो गया। पुनः अगले दिन खा पीकर फिर लग गया, सोचा कि कल 12 पेड़ काटे थे आज 14 पेड़ काटूँगा किन्तु ये क्या आज एक घंटे पहले गया और देर तक काम किया फिर भी आज 10 पेड़ ही काट सका।

तीसरे दिन तो 8 ही पेड़ काट पाया, चौथे दिन तो छः ही पेड़ काट पाया, पाँचवें दिन तो संख्या चार ही रह गयी और एक दिन तो ऐसा हुआ कि दिन भर लगा रहा फिर भी एक पेड़ ही काट पाया। वह समझ नहीं पा रहा मैं प्रतिदिन ज्यादा से ज्यादा मेहनत करता जा रहा हूँ फिर भी तदनुरूप फल की प्राप्ति नहीं हो रही। इसका भी कारण है वह पुरुषार्थ तो कर रहा था, किन्तु उसके पास समय नहीं था, किसके लिये? उसकी कुल्हाड़ी की धार जो मोथरी पड़ गयी थी, ठहर करके यदि धार पैनी कर लेता तो उसकी स्पीड बढ़ जाती। इसके लिये हमारे पास समय कहाँ होता है कि हम थोड़ा ठहर करके अपनी बुद्धि की धार थोड़ी पैनी कर लें। हमारी बुद्धि मोथरी हो जाती है, फिर भी उसी काम में लगे रहते हैं। इस कृत्य का परिणाम क्या सामने आने वाला है सोचो ! ठहरो।

हमारे बुजुर्ग, माता-पिता कहते हैं 'देख-भाल कर चलो' कभी ये नहीं कहते जा-चला जा। नहीं-पूरा सिद्धान्त यही है पहले देखो, और देखना दौड़ते हुये नहीं हो सकता, भालो याने जानो-सोचो समझो, ये दौड़कर के नहीं होता फिर आता है चलना। देखो सोचो समझो फिर चलो, आगे यदि कोई खतरा पैदा होता है तो पुनः देखो-भालो फिर चलो। सिंह जब चलता है तो पहले चार कदम चलता है फिर आगे पीछे अवलोकन करता है, फिर चलता है, फिर देखता है। वह खरगोश की तरह दौड़ता नहीं कि जाकर गड्ढे में गिर जाये। महापुरुष कभी तीव्रगति से नहीं चलते, धामे-धीमे चलते हैं। जो तीव्र-गति से चलता है रुकता नहीं वह गिरता ही गिरता है।

कोई भोजन जल्दी-जल्दी करे तो कहते हैं-भईया ! चबा-चबाकर खा भोजन कहीं भागा जा रहा है क्या, बोल रहा है तो धीमे-धीमे बोल, यदि कोई अच्छी बात सुना रहा है तो धैर्य धारण कर सुनो। एक दिन में कोई विद्यार्थी पूरी पुस्तक पढ़ लेगा तो याद नहीं कर पायेगा। एक दिन में एक पाठ पढ़े, बीच में विराम, दूसरा अध्याय अगले दिन याद करे तब तो याद कर सकता है। ग्रहण करने के बीच में थोड़ा विश्राम होना चाहिये। कोई ट्रेन ऐसी नहीं होती जिसमें पूरा बड़ा एक ही डिब्बा हो, डिब्बों के बीच में गेप होता है बीच में स्प्रिंग लगायी जाती है जिससे डिब्बे को धक्का न लगे यदि एक ही ट्रेन पूरी हो तो ट्रेन को ले जाना मुश्किल हो जायेगा, ट्रेन मुड़ते ही पलट जायेगी। उसमें बीच-बीच में गेप होना जरूरी है।

ठहरना बहुत जरूरी है यदि नहीं ठहरे तो समझो गये गहरे में। गहरे में चले गये तो बड़ा मुश्किल हो जायेगा। समुद्र तक में किसी गोताखोर को रत्नों का ढेर दिखाई दे जाये, वह तैरता ही रहे, ठहरकर के यदि मुट्ठी में न भरे तो वह बेरंग लौटकर के आ जायेगा। चौरासी लाख दरवाजों का एक महल, जिसमें एक अंधा व्यक्ति दरवाजा टटोल रहा है चलता जा रहा है, ठहर नहीं रहा, देख नहीं रहा अच्छे से जैसे ही खुला हुआ दरवाजा आया, त्यों ही सिर पर खुजली मच गयी और दरवाजा निकल गया, जब खुजली मची थी तब थोड़ा ठहर जाता तो, दरवाजा नहीं निकलता।

एक व्यक्ति जन्म के पश्चात् ही अनाथ हो गया, भीख माँग कर अपना जीवन बिता रहा था किन्तु उससे उसका गुजारा नहीं चला। वह जंगल की ओर चला गया, वृक्ष के नीचे बैठा था, तभी वहाँ से एक संत महात्मा निकले पूछा क्या बात है-उसने कहा मैं अनाथ हूँ, बहुत दुःखी हूँ मेरे पास खाने के लिये भी नहीं है। उन्होंने कहा चिंता न कर, ये ढेर लगा है पत्थरों का, इसी में एक छोटी सी पारसमणी है,

उसे तू खोज ले। उसने वहाँ एक लोहे का खंभा गाढ़ा और पत्थर उससे छुआता पुनः पानी में फेंक देता। क्रम-क्रम से वह पत्थर उठाता-छुआता और फेंकता चला जाता, यह उसका नित-प्रतिदिन का क्रम बन गया स्पीड से जल्दी छुआता और फेंकता।

उसके हाथ में पारसमणी आ गयी, तभी संत महात्मा ने आवाज लगायी ठहरो! जिसे खोजने के लिये तूने दीर्घकाल से परिश्रम किया है, वह पारसमणी आज तेरे हाथ में है। हमें लगता है अनादिकाल से हम जिस मनुष्य भव को, उत्तम धर्म, उत्तम जाति, उत्तम बुद्धि को प्राप्त करने के लिये भावना भा रहे थे, आज वह मनुष्यभव रूपी रत्न पारसमणी हमारे हाथ में है। उसे प्राप्त कर हम अपनी आत्मा को परमात्मा बनाने की विधि प्रारंभ कर सकते हैं। ये सभी निमित्त सामग्री इस भव में प्राप्त हो गयी है तो क्यों न हम रसायनिक प्रक्रिया द्वारा अपनी आत्मा को परमात्मा बना लें। आगे मिले न मिले इसलिये ठहर जाओ। जल्द बाजी करने से क्या या इधर-उधर देखने से क्या, जीवन की घंटी बज जायेगी और सब छूट जायेगा।

महानुभाव ! ठहरना परमावश्यक है। चलती ट्रेन में बैठा व्यक्ति बाहर चलते व्यक्ति को सही से देख नहीं सकता और बाहर का व्यक्ति ट्रेन में बैठे व्यक्ति को नहीं देख सकता, दोनों का ठहराव जरूरी है। यदि हम बाहर की वस्तु प्राप्त करेंगे तो बाहर की वस्तु भी ठहरी हो और हम भी ठहरे हुये हों किन्तु हमें तो अंदर की वस्तु चाहिये इसलिये हम अपने आप में ठहर जायेंगे तो हमें अपने अंदर का वैभव स्वयमेव मिल जायेगा। यदि हम नहीं ठहरेंगे तो हम वंचित रह जायेंगे, हम उस उपलब्धि को प्राप्त नहीं कर पायेंगे जिसके लिये हम सुदीर्घकाल से परिश्रम करते चले जा रहे हैं।

महानुभाव ! महात्मा बुद्ध और उनका शिष्य आनंद, बुद्ध ने अपने शिष्य से कहा, समीप में एक दरिया बहता है वहाँ से पानी ले

आओ। आनंद गुरु आज्ञा का पालन करने के लिये गये, वहाँ देखा कि पानी तो गंदा है और लौट आये। बुद्ध ने पूछा-क्यों क्या हुआ? वह बोला पानी गंदा था इसलिये नहीं लाया। बुद्ध ने दूसरे शिष्य को भेजा, उसने भी यही किया पुन: महात्मा बुद्ध ने कहा चलो मैं देखता हूँ। पहुँचे देखा पानी बहता जा रहा है तीव्र गति से।

महात्मा बुद्ध ने एक पत्थर लगवाया एक छोटे से गड्ढे में पानी बहकर जा रहा था उसमें पानी ठहर गया, उस पानी में जो मिट्टी बहकर आ रही थी वह बैठ गयी। बुद्ध ने सब शिष्यों को दिखाया कहा-देखो अब पानी कैसा है, वह स्वच्छ पानी था। पूछा कि पानी स्वच्छ कैसे हो गया, वे बोले पानी जब ठहर जाता है तो स्वच्छ हो जाता है। इसे शुद्ध करने के लिये लोग बाहर से फिटकरी डालते हैं। जब गुरुओं के वचनों को चित्त में डालकर के चित्त को शुद्ध करते हैं और ठहर जाते हैं तो शांति मिलती है, शांति में कषाय मंद होती हैं, चित्त विशुद्ध होता है और निर्मल चित्त ही आत्मा का अनुभव करने में समर्थ होता है।

जब कषायों के उद्वेग से हमारी आत्मा उबल रही हो उस समय हम आत्मा का अवलोकन नहीं कर सकते, उस समय आत्मा का साक्षात्कार नहीं कर सकते। जब अन्य किसी से साक्षात्कार हो रहा है तब आत्मा से कैसे करोगे? अपने आप को जानने के लिये थोड़ा विराम लेना पड़ेगा ही। इसलिये जैन दर्शन में सबसे अच्छी एक क्रिया बनायी है निश्चय से वही एक धर्म है, ठहरने का नाम वही है जिसे जैन दर्शन के शब्दों में कहते हैं 'सामायिक और ध्यान'। अन्य सभी क्रियायें स्तुति, भक्ति, वंदना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान आदि सब दौड़ने की क्रियायें हैं ठहरने की क्रिया श्रावक के लिये सामायिक है और श्रमण के लिये ध्यान है। यदि श्रावक-साधु की क्रिया में से इन दोनों को निकाल दिया जाये तो दोनों कभी शांति को प्राप्त न कर पायें। ठहरना ही वास्तव में शांति का कारण है।

पक्षी कितना ही उड़ता चला जाये उड़ते-उड़ते न तो शांति को प्राप्त कर सकता है, न अपना भोजन ग्रहण कर सकता है उसे भी डाली पर बैठना पड़ता है, दाना चुगना पड़ता है।

अभी तक जीवन में सीखा है उद्यमशीलता, लगे रहो, लगे रहो किंतु जैसे गाड़ी में गेयर भी जरूरी है तो गाड़ी में ब्रेक भी जरूरी है। बिना ब्रेक की गाड़ी खतरनाक ज्यादा होती है। भले ही गाड़ी में स्पीड गेयर नहीं है तो कोई बात नहीं धीमे-धीमे पहुँच जायेगी, कछुआ दौड़ नहीं सकता तो कोई बात नहीं धीमे-धीमे पहुँच सकता है किन्तु खरगोश अपनी गाड़ी में ब्रेक नहीं लगा सकता तो कहीं भी लुढ़क सकता है।

जीवन में ब्रेक लगाना जरूरी है। महात्मा बुद्ध कपिल वस्तु के राजा शुद्धोधन के पुत्र थे। उनके जन्मते ही किसी निमित्त ज्ञानी ने बताया कि या तो ये बहुत बड़ा सम्राट बनेगा या सन्यासी। निमित्त ज्ञानियों ने कहा-कि ऐसा प्रयास करना कि जिससे इसके जीवन में वैराग्य न हो पाये। पिता ने ऐसी व्यवस्था कर दी कि कभी महलों से बाहर जाना ही न पड़े। वह महलों में रहते-रहते ऊबने लगे। एक दिन पिताजी से बोले-आप मुझे इस राज्य का उत्तराधिकारी बनाना चाहते हैं, तो जिस राज्य को मुझे देना चाहते हैं क्या मैं उसे देख नहीं सकता ? पिता ने कहा हाँ बेटा-किसने मना किया। बोले-पिताजी मैं अपने राज्य का भ्रमण करना चाहता हूँ कहाँ तक इसका विस्तार है।

वे रथ पर सवार हुये, सारथी ने भी रथ चलाना शुरू किया। रथ आगे बढ़ा उन्होंने देखा सामने एक वृद्ध पुरुष हाथ में लाठी लेकर के हाँफता हुआ, खाँसता हुआ चला आ रहा है जिसकी हड्डी मात्र दिखाई दे रही है। सिद्धार्थ ने कहा ठहरो ! सारथी घबरा गया, मुझसे क्या गलती हो गयी। पूछा ये क्या है? महाराज ! ये आदमी है। यदि ये आदमी है तो मैं कौन हूँ। उसने कहा-महाराज! ये वृद्ध हो गया है,

वृद्ध होने से शरीर सूख जाता है, इसलिये ये ऐसा दिखाई दे रहा है। तो क्या आदमी वृद्ध भी होता है? हाँ महाराज वृद्ध तो प्रत्येक व्यक्ति होता है, संसार के सभी लोग वृद्ध होंगे। तो क्या मैं भी वृद्ध होऊँगा? सारथी ने दबी जुबान से कहा-हाँ महाराज बात तो ये ही है। छोटा पौधा बड़ा बनता है, बड़े से फिर और बड़ा बनता है। ओ होऽऽ चलो मैं वृद्ध हो गया।

रथ और आगे बढ़ा-सारथी नहीं समझा। सामने से एक युवा किन्तु अस्वस्थ जिसे 2-3 लोग बड़ी मुश्किल से पकड़कर ले जा रहे थे दिखाई दिया। सिद्धार्थ ने पूछा, ये क्या है? सारथी बोला महाराज ये भी आदमी है, ये कैसा आदमी है? महाराज ये अस्वस्थ है, रोगी है। अरे! ये रोग क्या चीज होती है? महाराज! यह शरीर रोगों का घर है, ओहोऽऽऽ तो क्या मैं भी रोगी होऊँगा, महाराज सत्य तो ये ही है व्यक्ति कभी भी अस्वस्थ हो सकता है। अच्छा ! चलो मैं रोगी हो गया। सारथी फिर भी नहीं समझा, ये क्या कहना चाहते हैं।

आगे बढ़े, सामने से एक अर्थी आ रही थी, चार लोग जिस पर कंधे लगाये थे 'रामनाम सत्य' कहते जा रहे थे। कहा ठहरो! ये क्या है? महाराज! इस आदमी की मृत्यु हो गयी है, इसे जलाने के लिये श्मशान ले जा रहे हैं। इसकी मृत्यु कहाँ हुयी ये तो जीवित दिखाई दे रहा है इसके दो हाथ-पैर चेहरा सब कुछ तो है। महाराज ! इसके शरीर में से आत्मा निकल गयी है, ये शरीर तो अब मिट्टी है। तो मृत्यु क्यों हो गयी? महाराज ये तो संसार का नियम है, 'जातस्य ध्रुवं मृत्यु' जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु अवश्य होती है। सबकी मृत्यु होती है, तो क्या मेरी भी मृत्यु होगी ? सारथी सत्य कैसे कहे और झूठ भी कैसे बोले, फिर भी दबी आवाज में बोला-महाराज सत्य तो यही है सबकी मृत्यु होगी। वे बोले ओहोऽऽऽ मैं मृत्यु को प्राप्त हो गया।

सारथी से कहा-रथ को लौटाओ, लौटकर आये। माता-पिता-पत्नी बेटी को सोता छोड़ रात को बारह बजे महल छोड़कर आ गये, जाकर दीक्षा ले ली और यथाजात दिगम्बर मुनि बन गये, घोर तपस्या की, छः-छः महीने के उपवास किये, केवल जल का आहार लिया। बुद्ध के जो जातक ग्रंथ हैं उसमें लिखा है-कि मैंने केशलोंच किया, भूमि पर शयन किया, नंगे पैर मैं चला, निर्ग्रंथ रहा ऐसी चर्या मैंने धारण की। इस कठोर चर्या से जब वे घबरा गये तो उनके मन में आया कि पिता ने मना किया था, मैं माना नहीं, इस साधना से कुछ भी होने वाला नहीं, मुझे घर में ठहर जाना चाहिये तब विचारों में परिवर्तन आया और लौटकर के कपिलवस्तु की ओर जाने लगे।

किसी व्यंतर देव ने देखा कि ये साधना से लौटकर जा रहे हैं इन्हें समझाना चाहिये। वह दरिया के किनारे पहुँचा, सिद्धार्थ जल पीने के लिये दरिया के किनारे गये। वहाँ देखते हैं एक गिलहरी दरिया में अपनी पूँछ को भिगोती है और बाहर जाकर झटकार देती है, फिर पूँछ डुबो देती है फिर झटकार देती है यह क्रम जब सिद्धार्थ ने देखा तो कहा-ये कौन सा खेल है-गिलहरी से पूछा-तुम ये क्या कर रही हो ? उसने उनकी ओर देखा भी नहीं। दूसरी बार पुनः पूछा-फिर भी कोई उत्तर नहीं दिया, कौतुकता बढ़ी और फिर पूछा तो गिलहरी ने कहा-इस दरिया ने मेरे बच्चों को खा लिया है, तो तुम क्या कर रही हो? मैंने संकल्प लिया है मैं इस दरिया को सुखा करके रहूँगी। सिद्धार्थ यह सुनकर मुस्कुरा गये, बोले क्या तुझे अपनी क्षमता का ज्ञान है? क्या तू दरिया को सुखा पायेगी? तेरी जिंदगी कितनी बड़ी है और दरिया कितना बड़ा। वह तुनक करके बोली-मैं वो सिद्धार्थ नहीं जो संकल्प लेकर तोड़ दूँ जब तक जीवित रहूँगी संकल्प नहीं तोडूँगी, दरिया को सुखाने में लगी रहूँगी और मैं उतावलेपन से काम नहीं करती, ठहरती हूँ फिर काम करती हूँ, सोचती हूँ तब मैं करती हूँ।

सिद्धार्थ ने सोचा ये तो वास्तव में बहुत बड़ी सीख है, वे बिना पानी पिये वहाँ से लौटते हैं और मध्यम मार्ग का सहारा लेते हैं, कठोर तपस्या को छोड़कर ठहरते हैं। जातक ग्रंथों में मानते हैं कि उन्हें बोधि की प्राप्ति हुयी।

महानुभाव ! उबलते पानी में अपना चेहरा नहीं देखा जा सकता यदि वह जल शांत हो जाये तो देखा जा सकता है। कषायों से उबलती आत्मा में अपना चेहरा नहीं देखा जा सकता, कषायें जब शांत हो जायें तब अपनी आत्मा को देखा जा सकता है। जीवन में महत्त्वपूर्ण है 'ठहराव'। ठहरकर के इन शब्दों का चिंतवन करें, कि हम जीवन में कितना ठहरते हैं। प्रत्येक कार्य को प्रारंभ करने से पहले ठहरना चाहिये। प्रतियोगिता में भाग लेने वाला सबसे पहले शांत चित्त से ठहरता है, धावक भी पहले ठहरता है फिर रेस लगाता है। आपको यदि कोई लक्ष्य दौड़कर भी प्राप्त करना है तो पहले ठहर जाओ, विचारो कहाँ दौड़ना, कब दौड़ना है यदि अचानक दौड़ना प्रारंभ कर दोगे तो हाथ-पाँव तोड़ लोगे मोच आ जायेगी। वह मोच आगे बढ़ने नहीं देगी और बिना ठहरे सोच बड़ी हो नहीं सकती, ठहर करके अपनी सोच को विराट किया जा सकता है।

''पैर की मोच और छोटी सोच,
व्यक्ति को आगे नहीं बढ़ने देती।''

ऐसे चलो जिससे पैर में मोच न आ जाये और काम ऐसे करो आपकी सोच छोटी न रह जाये। ठहर कर इन सबके बारे में विचार करें, आज बस इतना ही।

।। श्री शांतिनाथ भगवान की जय ।।

८. ''राजी खुशी''

महानुभाव ! आज का विषय है 'राजी खुशी' बड़ी सामान्य सी बात है। संसार का प्रत्येक प्राणी राजी-खुशी चाहता है। किन्तु वह राजी खुशी के राज को भूल जाता है। राजी खुशी तो चाहते हैं पर राजी खुशी की राह पर नहीं चलना चाहते इसीलिये उनके जीवन में नाराजी रहती है। नाराजी अच्छी नहीं है। संसार में दो प्रकार के प्राणी होते हैं, एक राजी होते हैं और एक वे जो राजी नहीं होते। जो राजी हैं उनके पास खुशी है, जो राजी नहीं है उनके पास नाराजी रहती है।

'राजीखुशी' ये सूत्र वाक्य है। यदि आप हर किसी व्यक्ति के साथ रहने में राजी हों, हर किसी स्थान पर रहने में, हर किसी समस्या को सहने में हमेशा राजी रहो, कहो-''जैसी तेरी मर्जी, बस मेरी तो है इतनी सी ही अर्जी, अपनी अर्जी प्रस्तुत कर दो। चाहे फूल मिल रहे हैं तो भी तुम्हारे हित के लिये, काँटे मिल रहे हैं वह भी तुम्हारे हित के लिये। जीवन की एक धारणा बना लो मेरे साथ आज तक बुरा हुआ नहीं, आज बुरा हो नहीं रहा और जीवन में कभी बुरा हो नहीं सकता। जो मेरा है, वह मेरा था और मेरा रहेगा उसे विश्व की कोई शक्ति छीन नहीं सकती और जो मेरा नहीं है वह मैं लाख यत्न करने पर भी ग्रहण नहीं कर सकता। जो आपके पास है वह करोड़ों अरबों के पास नहीं है फिर भी आप दुःखी हैं तो तरस आता है कि जो आपके पास है उसे पाकर दुःखी हैं, जो नहीं है उसके लिये तरस रहे हैं किन्तु जिसके पास ये नहीं जो तुम्हारे पास है फिर भी तुमसे ज्यादा खुश है।

महानुभाव ! सुख-शांति का एक छोटा सा उपाय यही है जो कुछ तुम्हें तुम्हारे पुण्य-भाग्य से मिला है उसे खुशी-खुशी स्वीकार कर लो, उसी में राजी हो जाओ। यदि बालक माता-पिता के द्वारा दिये

उपहार में राजी नहीं होता, उसे खुशी नहीं मिलती, उपहार को फेंक देता है तो दिनभर रोता रहता है उसका सुख नष्ट हो जाता है। यदि इस उपहार को स्वीकार कर ले तो दूसरा उपहार भी मिल सकता है किन्तु राजी तो होना चाहिये। पहली शर्त ये है कि हम राजी हो जायें, यदि तुम राजी नहीं होना चाहते तो अपने अंदर ऐसी कुव्वत पैदा करो कि जिसमें तुम राजी हो वह वस्तु तुम्हें प्राप्त हो सके। या तो जो प्राप्त है उसमें राजी हो जाओ नहीं तो जिसमें तुम्हारी खुशी है, उसे प्राप्त करने की कोशिश करो, उसे प्राप्त करके ही रहो। प्राप्ति में भी राजी हो सकती है और अप्राप्ति में भी राजी हो सकती है किन्तु राजी के बिना कभी खुशी मिलती नहीं। जैसे शरीर के बिना प्राण नहीं रहते, तिलहन के बिना तेल नहीं रहता, दूध के बिना घी नहीं मिलता। भवन मकान दुकान ये सब कारण हैं।

जैन दर्शन में कारण और कार्य का विशेष विवेचन दिया है। यदि समझें तो राजी कारण है और खुशी कार्य। बिना बीज के वृक्ष नहीं होता, बिना नींव के महल नहीं बनता, राजी तो एक नींव है तुम राजी तो हो जाओ हम आपको दावे के साथ कहते हैं जिस किसी कार्य में आप राजी हो गये उसी कार्य में आपको खुशी मिलना आरंभ हो जायेगी।

एक भिखारी यदि एक रोटी खाकर भी राजी हो जाता है तो एक रोटी खाकर भी खुश हो जाता है, एक सम्राट छः खण्ड के राज्य को प्राप्त करके भी राजी नहीं होता है तो छः खण्ड का राज्य प्राप्त करके भी दुःखी हो सकता है। खुशी तो तभी मिलेगी जब हम राजी हो जायें और राजी तो हमें स्वयं होना पड़ेगा। ऐसा नहीं है कि हमारी जगह कोई और राजी हो जाये। राजी कब होना है ये जीवन के सबसे बड़े राज की बात है। समस्त रहस्यों का यदि कोई रहस्य है, वैसे तो दुनियाँ में बहुत गूढ़ बाते हैं, ऐसे सिद्धान्त हैं जिनका लोग अन्वेषण करते हैं

उन सभी का यदि सबसे बड़ा सिद्धान्त है तो वह है राजी हो जाओ। ये सभी गूढ़ सिद्धान्तों का राज है कि कहीं भी मिले, जो कुछ भी मिले उसमें राजी हो जाओ यदि स्वयं राजी होना सीख लिया तो अंतरंग से खुशी मिलना तुम्हें प्रारंभ हो जायेगी।

महानुभाव ! घर में कलह इसलिये होते हैं क्योंकि तुम राजी नहीं हो, संस्थान में कलह इसलिये है क्योंकि तुम राजी नहीं हो, समाज में कलह इसलिये है कि तुम राजी नहीं हो। हमारी और आपकी चेष्टा होती है कि हम सामने वाले को बदलना चाहते हैं। सामने वाले का व्यवहार, उसका व्यक्तित्व, सामने वाले की कृति और प्रकृति अपने अनुसार बनाना चाहते हैं, हम उसमें राजी नहीं होना चाहते और सामने वाले के अनुसार चलना नहीं चाहते। द्वन्द यहीं से प्रारम्भ हो जाता है। हम चाहते हैं सामने वाला हमारे अनुसार चले, वैसा ही बोले किन्तु हम तो अपने ही मन का करेंगे, यह तो नापने-तौलने के बाँटों में ही अंतर है।

यदि तुम चाहते हो कि सामने वाला तुम्हारे अनुसार चले तो तुम भी सामने वाले के अनुसार चलना प्रारंभ करो। संसार में ऐसा कोई भी पुरुष नहीं है जो अपना सम्पूर्ण जीवन सिर्फ और सिर्फ अपनी शर्तों पर जी सके, उसे जीवन में सामने वाले की शर्तों को भी स्वीकार करना पड़ता है और फिर चाहे तुम राजी से करो या गैर राजी से चाहे नाराजी से करो शर्तों को स्वीकार तो करना पड़ता है। तुम चाहते हो धूप न हो, धूप तो होगी सो होगी छाता लेकर यदि तुम नहीं आये तो ये गलती धूप की नहीं है आप धूप में ही राजी हो जाओ।

एक संत फकीर कहता था, मुझे जो कुछ भी मिलता है वह मेरे मन के अनुकूल मिलता है भगवान कितना दयालु है जो सबका ध्यान रखता है? एक व्यक्ति इस बात को सुन रहा था, उसने कहा-अरे भगवान् क्या ध्यान रखता है, तुझे दो दिन हो गये भूखे प्यासे क्या

भगवान ने ध्यान रखा तुम्हारा ? फकीर बोला अरे भाई ! तू नहीं जानता ये भगवान् ने मुझे शक्ति दी कि मैं दो उपवास कर सकूँ, यदि भोजन आ जाता तो मैं उपवास कैसे करता, भगवान ने कितना अच्छा मौका दिया। तब तक एक सेठ आया उसको भोजन सामग्री देकर चला गया। वह बोला-भगवान कितना ध्यान रखता है, मेरे दो उपवास हो गये थे, उन्हें लगा कि मुझे भूख लगी होगी तो मेरे लिये भोजन दे दिया। प्रभो! क्या कृपादृष्टि है तेरी, कोई शब्दों में उसे बाँध नहीं सकता। तभी वह फकीर भोजन सामग्री रखकर पानी लेने के लिये नदी किनारे गया तब तक एक श्वान आया और पूरा भोजन खाकर चलता बना। अब वह व्यक्ति जो ये सब देख-सुन रहा था, सोचता है अब ये आकर निःसंदेह भगवान को गालियाँ देगा। फकीर आया देखा कि यहाँ तो कुछ भी नहीं, कहता है वाह धन्य है भगवान क्या मेहरबानी है तेरी, तूने दो उपवास करने का मौका तो दिया किन्तु तीन उपवास का मौका तो मैंने जीवन में कभी पाया ही नहीं, और कहकर नाचने लगा। महानुभाव ! जो हर बात में राजी है उसे नाखुश कौन कर सकता है।

दो फकीर भीख माँगने जाते थे उनके पास एक चांदी का कटोरा था। पहले वाले ने सोचा इसे मैं नाखुश करके ही रहूँगा। और कहा-भाई ! अब हमारी तुम्हारी नहीं बनेगी, हम अलग होना चाहते हैं। छोटा फकीर कहता है जैसी आपकी मर्जी, अच्छा मर्जी-मर्जी कहता है, अब मैं तेरे साथ नहीं रहूँगा, जैसी आपकी मर्जी। अब ये झोपड़ी तेरी और वह मेरी, जैसी आपकी मर्जी। पुनः कहा ये चाँदी का कटोरा तो मैं ही लूँगा, जैसा आप चाहो। चल! तू रख ले, बाद में कहेगा कटोरा खुद ने रख लिया, जैसा आप उचित समझें। अच्छा ! कितना भोला बनना चाहता है कटोरा चाँदी का है ऐसे ही थोड़े न दे दूँगा कटोरा तो मैं लूँगा-जैसा आप उचित समझें।

मैं नहीं दूँगा एक काम कर कटोरे को आधा-आधा कर लेते हैं-जैसी आपकी मर्जी। मूर्ख ! कटोरा टूट जायेगा, न तेरे काम का रहेगा, न मेरे काम कर रहेगा-जैसी आपकी मर्जी। वह कहता है क्या तू मुझसे लड़ नहीं सकता। वह बोला हाँ-बस मैं यही काम नहीं कर सकता। जिसमें तेरी मर्जी है वही मेरी अर्जी है, मैं हर बात में राजी हूँ। बड़े फकीर ने कहा-हम अलग-अलग नहीं होंगे और उसके पैर छू लिये। जब तू हर बात में राजी है तो मैं तुझे नाखुश कैसे कर सकता हूँ।

महानुभाव ! जीवन में वास्तव में सुख-शांति को प्राप्त करने का यह बहुत अच्छा सूत्र है। घर में रहो राजी होकर रहो, रहना तो पड़ता ही है। जल में रहकर मगर से बैर क्यों करते हो, मित्रता कर लो न! खुश होकर रहो सुकरात की तरह से। सुना है सुकरात की पत्नी बहुत तेज थी, बहुत अपशब्द बोलती थी व अपमान करती थी। एक दिन सुकरात आये और उनकी पत्नी ने ठंडा पानी बाल्टी भर कर उसके ऊपर डाल दिया। सुकरात बोले-वाह ! क्या कृपा है तेरी, अभी तक तो गरजती थी आज बरस गयी। मैं बहुत समय से नहाया नहीं था इसके बहाने मैं नहा लिया। दो चार दिन बाद सुकरात हाथ में एक गन्ना लेकर आ रहे थे, पत्नी को गुस्सा आया, न आव-देखा न ताव लिया गन्ना और उसके सिर पर दे मारा, गन्ने के दो टुकड़े हो गये। वे कहते हैं वाह ! तू कितनी बुद्धिमान है अरे मैं सोच रहा था कि एक गन्ना है, तू खायेगी या मैं। कैसे खाते बड़ा मुश्किल था किंतु तूने तो निर्णय ही कर दिया इसके दो टुकड़े हो गये, चल अब एक तू खा ले एक मैं खाता हूँ। पत्नी देखकर हतप्रभ हो गयी ऐसा भी इंसान हो सकता है।

महानुभाव ! जीवन में यदि कभी खुशी चाहिये तो राजी को अपनाइये। हर किसी के साथ राजी हो जाइये तुम्हारे सुख को कोई

नहीं छीन सकता। इसे इंग्लिश में कहें तो Adjustment। यदि तुममें निभने और निभाने की कला है तो संसार की कोई भी शक्ति तुम्हें दु:खी कर नहीं सकती। चाहे कैसे ही कर्म का उदय आ जाये।

एक वाक्य जो आनंद के समय में जब तुम जीवन के सर्वोत्कृष्ट आनंद का अनुभव कर रहे हों, उस वाक्य तो यदि तुम पढ़ लो तो तुम्हारे मन में अहंकार पैदा नहीं होने देगा और वही वाक्य जब आप दु:खी हों तो आपके जीवन में आनंद की लहर आ जायेगी। वह वाक्य है ''ये भी गुजर जायेगा, ये सदा नहीं रहेगा।'' महानुभाव ! जीवन में खुशी हमें स्वयं अपने चित्त की भूमि पर उत्पन्न करनी है। राजी के बीज बोओ, खुशी की फसल काटो। अग्नि की चिंगारी बोकर जलकण प्राप्त नहीं किये जाते, ज्वालायें पैदा होती हैं। हम दूसरों पर दबाव डालकर दूसरों के दिल को नहीं जीत सकते।

तलवारों से गले काटे जाते हैं, तलवारों से व्यक्ति के सिर को झुकाया जाता है, तलवारों से जागीरें छीनी जाती हैं, देशों को गुलाम किया जाता है। दिलों को गुलाम करने के लिये तलवार नहीं प्यार चाहिये। यदि जीवन में प्यार है तो इंसान तो ठीक पशु भी तुम्हारा गुलाम हो सकता है। प्यार से तो श्वान भी दुम हिलाता हुआ तुम्हारे पास आ जाता है। चाहे तुम कितनी ही भाषा जानते हों कोई एक मात्र हिन्दी जानता है, कोई हिंदी अंग्रेजी दोनों ही भाषा जानता है, कोई प्राकृत जानता है, कोई संस्कृत जानता है, कोई गुजराती, मराठी-बंगाली आदि-आदि भाषायें जानता है, पचासों भाषा जानता हो और जितनी जान नहीं सकता फिर भी एक मिनट की संतुष्टि के लिये मान लो 700 लघु भाषा भी जान ले, 18 महाभाषा भी जाने ले किंतु जिसने अपने जीवन में प्रेम की भाषा नहीं सीखी तो सब भाषायें शून्य हैं।

प्रेम की भाषा एक ऐसी भाषा है जो तीनों लोकों में चलती है चाहे स्वर्ग है चाहे नरक, चाहे तिर्यंचगति हो, चाहे कर्मभूमि हो, चाहे

भोग भूमि, चाहे पशुओं की भाषा हो। प्रेम की भाषा जिसे आती है वह अपना परिचय किसी से भी कर सकता है। भले ही कितनी अच्छी हिन्दी, अंग्रेजी या संस्कृत आदि भाषा जानता हो किन्तु उसकी भाषा में प्रेम नहीं है, स्निग्धता नहीं है तो समझ लेना हाथों में चिकनाई भले ही बनी रहे, वाणी में मन में स्निग्धता नहीं है तो वह खल की भाँति है। जिसकी बातें रूक्ष होती हैं वह व्यक्ति खल कहलाता है। खल किसे कहते हैं-जिसमें से तेल निकल गया है, उसे खली कहते हैं। साहित्यकार उसे दुष्ट कहते हैं। दुष्ट में बस एक ही चीज नहीं होती वह है प्रेम। नारकी में रतिभाव नहीं होता 'न रता इति नारकी'।

प्रेम कब उत्पन्न होता है? जब आप प्रतिकूलताओं को सहन करने के लिये तैयार हो जाओ। आप कहते हो प्रेमपूर्वक मुझे कोई सूखी रोटी भी दे वह भी अच्छी लगती है और अपमान के साथ 56 प्रकार के व्यंजन भी परोसे तो उनमें स्वाद नहीं आता। उस प्रेम की चाबी तो तुम्हारे पास है, उसके हृदय का ताला तो तुम खोलोगे। तुम यदि किसी से प्रेमपूर्वक मुस्कुरा के मिलते हो तो सामने वाले का चेहरा खिल ही जायेगा, एक बार नहीं दो चार छः बार में खिल ही जायेगा। आशावादी बनो, निराशावादी मत बनो।

एक भिखारी रोज-रोज किसी गृहस्थ के यहाँ भीख माँगने जाता था, उसके यहाँ उसे कुछ नहीं मिलता था, रोज खाली हाथ ही लौटकर आता था। एक दिन उस घर की गृहिणी ने सोचा ये भिखारी ऐसे नहीं मानेगा, उसने ऊपर से पोंछा लगाने का कपड़ा फेंक दिया, भिखारी ने हाथ में लपक लिया बोला धन्यवाद और वह उस पोंछे के धागे निकाल कर बत्ती बनाता है, दीपक जलाता है प्रकाश हो गया। दूसरे दिन आया तो उस महिला ने ऊपर से कचरा व राख डाल दी। वह कहता है भगवान् तू कितना अच्छा है। वह पूछती है क्यों, क्या

अच्छा हो गया। वह बोला-बहिन जी क्षमा करना, आप देना नहीं जानती थीं, कम से कम आज आपने देना शुरू तो किया। आज आपने यह दिया है क्योंकि आज तुम्हारे पास ये है। कल आप वह भी देंगी जो आपके मन में उत्पन्न होगा वह महिला बहुत शर्मिंदा हो गयी और उस भिखारी को जो यथेष्ट सामान था वह दे दिया।

महानुभाव ! जीवन में आशावादी बनो। जो तुम्हें क्रूरता या घृणा की दृष्टि से देखता है उसे भी मुस्कुरा कर स्वीकार करो सामने वाले का यह व्यवहार ज्यादा टिकेगा नहीं। बुद्ध के जीवन की घटना है। वे किसी गाँव से निकले, तो लोग उनका अपमान करने लगे, गालियाँ देने लगे, वे वहाँ शांति से खड़े रहे। जब वे लोग गाली देकर थक गये तब बुद्ध ने पूछा-आप लोगों का कार्य हो गया हो तो मैं आगे चलूँ। वे लोग आश्चर्य में पड़ गये कि कोई पुरुष क्या ऐसा भी हो सकता है, जो बिना जवाब दिये, सब कुछ सुनकर यूँ ही चला जाये। वे बोले-हमारी गालियों का क्या हुआ? उन्हें साथ नहीं ले जाओगे।

बुद्ध ने कहा-मैं आप लोगों से एक बात पूछना चाहता हूँ? क्या तुम्हारे यहाँ कभी मेहमान आते हैं? हाँ-हाँ खूब आते हैं, हम कोई साधु सन्यासी थोड़े ही हैं जो मेहमान न आयें। अच्छा ! तो मेहमान खाली हाथ आते हैं या कुछ लेकर आते हैं। अरे ! लेकर आते हैं मिठाई या फल। मेहमान जब जाते हैं तब उन्हें कुछ विदाई भी देते हो? हाँ वस्त्र भी देते हैं, पैसे भी देते हैं। यदि मेहमान तुम्हारे उस उपहार को स्वीकार न करे तो क्या होगा? हमारा हमारे पास रह जायेगा। बस आपने जो मुझे भेंट चढ़ाया है मैंने उसे स्वीकार नहीं किया। इतना कहकर बुद्ध मुस्कुराते हुये चल दिये, पुनः सभी ने उनसे क्षमा याचना की, झुक गये-पानी-पानी हो गये।

महानुभाव ! संक्षेप में इतना ही समझना जैसे पुराने समय में लिखा आता था थोड़ा लिखा बहुत समझना, आप उसी जमाने के

व्यक्ति है थोड़ा कहा बहुत समझना। इसलिये खुशी तलाशने के लिये कहीं भटको मत जो मिल रहा है उसी में राजी हो जाओ, फिर तुम्हें वह सब भी मिल जायेगा जो तुम चाहते हो। बेटे को पिता यदि 10 रु. देते हैं बेटा राजी हो जाता है तो आगे 20 रु.भी देते हैं, पचास रु. भी देते हैं बढ़ाते चले जाते हैं। यदि बेटा पहले ही गुस्सा होकर फेंक दे तो पिता कहता है-चुपचाप रख ले मेरे पास अभी हैं नहीं और ज्यादा हुआ तो दो थप्पड़ भी लगा देते हैं और नोट भी जेब में रख लेते हैं। बेटा रोएगा-धोयेगा पुन: तीसरे दिन आकर फिर पिता से पैसे माँगने लगता है। हम वैसे नादान बच्चे नहीं हैं हमे तो भगवान जो चीज देता है, हमें जो हमारे पुण्य से मिलता है, उसमें राजी हों और ये सत्य है उससे बहुत खुशी मिलेगी। जो माँगने पर खुशी नहीं मिलती है वह बिना माँगे सब कुछ खुशी मिलती है।

बिन माँगे मिले जो दूध बराबर, माँगे मिले सो पानी।
कह कबीर वह खून बराबर, जामें खींचा-तानी॥

महानुभाव ! आप जानते हैं-

बिन माँगे मोती मिले, माँगे मिले न भीख।

रत्न कभी माँगने से नहीं मिलते, माँगने पर तो भीख भी नहीं मिलती, बिना माँगे सब कुछ मिल जाता है। जो मिला है उसे सहर्ष स्वीकार करो, उसी में राजी हो जाओ। और जहाँ संतुष्टि होगी, नाराजगी नहीं होगी वहाँ प्रसन्नता भी होगी। प्रसन्न मुखमुद्रा धर्म ध्यान का लक्षण कहा है। अत: सदैव प्रसन्न रहें धर्मध्यान में रत रहें।

।। श्री शांतिनाथ भगवान की जय ।।

९. ''भोजन से भजन''

महानुभाव ! आत्मा को जानने के लिये पुद्‌गल को जानना आवश्यक है। पुद्‌गल का आत्मा पर कैसे-कैसे प्रभाव पड़ता है? जैसा पुद्‌गल होता है, वैसा प्रभाव होता है। संसार में जितने भी पदार्थ हैं सबका अपना-अपना स्वभाव है, अपनी-अपनी प्रकृति है और वे अपनी प्रकृति स्वभाव को छोड़ते नहीं। जिनमें विकृत होने की सामर्थ्य है वे विकृत हो विभाव युक्त हो जाते हैं किन्तु जिनमें विकृत होने की ही सामर्थ्य नहीं है वे विकृत नहीं हो सकते। धर्म-अधर्म-आकाश-काल ये चारों द्रव्य अनादि काल से स्वभाव रूप हैं, थे और रहेंगे। जीव और पुद्‌गल स्वभाव और विभाव में क्रीड़ा करता रहता है। जीव एक बार स्वभाव में आ जाता है तो विभाव में जाता नहीं, पुद्‌गल अनंत बार भी स्वभाव को प्राप्त हो जाता है फिर भी बार-बार विभाव को प्राप्त हो जाता है।

पुद्‌गल में ऐसी क्षमता है स्वभाव और विभाव में जाने की, किंतु पुद्‌गल का स्वभाव भी नियत है उसका कभी अभाव नहीं होता। स्पर्श-रस-गंध व वर्ण ये चार गुण प्रत्येक पुद्‌गल में पाये जाते हैं चाहे हम उन्हें इन्द्रियों से ग्रहण कर पायें या न कर पायें। पुद्‌गल जैसा है उसका प्रभाव वैसा ही रहेगा। जिनशासन में कारण कार्य के रूप में प्रसिद्धि को प्राप्त है। जैन शासन में कोई भी कार्य कोई भी क्रिया बिना कारण के नहीं होती। क्रिया जो शुद्ध द्रव्यों में हो रही है उनमें भी कोई न कोई कारण है। कारण दो प्रकार के माने जाते हैं एक निमित्त कारण एक उपादान कारण। उपादान कारण द्रव्य का अंतरंग कारण है वह कारण इसलिये माना जाता है क्योंकि हर द्रव्य में यदि वह तात्कालिक पर्याय नहीं है तो वह द्रव्य अन्य पर्याय को प्राप्त होने में समर्थ नहीं हो सकेगा। आप कहेंगे कैसे?

किसी स्त्री में माँ बनने की क्षमता है और पुरुष में पिता बनने की क्षमता होती है, बिना पुरुष के संयोग के कोई भी स्त्री वंश वृद्धि नहीं कर सकती, किन्तु हर स्त्री वंश वृद्धि नहीं कर सकती। जो स्त्री बांझ नहीं है, वह स्त्री भी हर समय वंश वृद्धि नहीं कर सकती। कोई बालिका है वह वंश वृद्धि करने में असमर्थ है, वृद्धा है तो वंशवृद्धि करने में असमर्थ है उपादान शक्ति होते हुये भी, तो हम कहेंगे अभी उसमें तात्कालिक उपादान नहीं है। मिट्टी से कलश बनता है, बहुत अच्छी बात है किन्तु सूखी मिट्टी से नहीं बनता, गीली मिट्टी तात्कालिक उपादान से सहित हो गयी।

आटे से रोटी बनती है किन्तु सूखे आटे से नहीं, गीले आटे से बनती है। निमित्त बाहरी वस्तु को कहते हैं जो बाह्य निमित्त होते हैं। कलश बना कुम्हार आदि के निमित्त से, रोटी बनी किसी महिला के निमित्त से, चकला-बेलन, तवा अग्नि आदि से रोटी को तैयार किया, कुम्हार ने भी कलश बनाया मिट्टी में कलश बनने की शक्ति थी इसलिये चाक-चीवर-धागा-जल, दण्ड आदि लेकर कलश बनाया व अग्नि पक्व कर कलश रूप देने में समर्थ हो सका तो निमित्तों का भी प्रभाव पड़ता है।

निमित्तों का प्रभाव उस कार्य के अच्छे-बुरे दोनों में पड़ता है किन्तु उपादान का प्रभाव उस ही रूप होता है जैसा उपादान होता है। इसे ऐसे समझ लें कि किसान ने खेत में गेहूँ बो दिया तो उससे गेहूँ की फसल ही पैदा होगी। गेहूँ कितना अच्छा होता है यह बात निर्भर करती है कि समय पर जुताई सिंचाई की हो, खाद आदि दिया हो तो अच्छा गेहूँ पैदा होगा किन्तु यदि समुचित निमित्त नहीं मिले हैं तो उससे गेहूँ तो पैदा होंगे किन्तु वह गेहूँ पुष्ट नहीं होगा, सूखा सा भी हो सकता है पानी के अभाव में, किन्तु ऐसा नहीं है कि वह गेहूँ निमित्त कमजोर होने से सरसों बन जाये या बाजरा, ज्वार अन्य कुछ

बन जाये। इससे सिद्ध होता है जैसा उपादान होता है, उपादान में ही कार्य होता है और कार्य उपादान के अनुरूप होता है। निमित्त के द्वारा कार्य होता है किन्तु निमित्त में कार्य नहीं होता कार्य सदैव नैमित्तिक में होता है। जो निमित्त से प्रभावित हो उसे नैमित्तिक कहते हैं।

महानुभाव ! आज का विषय है 'भोजन से भजन'। भोजन और भजन का भी एक निमित्त-नैमित्तिक संबंध है। भोजन भजन में कारण है भोजन जैसा होता है भजन वैसा ही होता है। यदि आपके सामने कोई रत्न रखा है नीलम, पन्ना, मूंगा, मोती या पुखराज आदि आप टॉर्च के प्रकाश से देखते हैं तो उन रत्नों में से कांति निकलती है जो रत्न जैसा है वैसी ही कांति निकलती है ऐसा नहीं है कि पन्ना हरा हो और उसमें से लाल किरणें निकलें। किरणें पन्ना में से हरी ही निकलेंगी जिस रत्न की जैसी किरणें हैं वह वैसी ही निकलेंगी।

आप सब जानते हैं यदि किसी किसान ने बोरे में सरसों भर दी और कुप्पी से निकालता है तो सरसों ही निकलती है गेहूँ निकलकर नहीं आयेगा चाहे कुप्पी लोहे की हो, पीतल की हो या सोने-चांदी की इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। टंकी में जो भी द्रव्य भरा हो टोंटी में से वही द्रव्य निकलेगा। ऐसा नहीं कि टोंटी लोहे की हो तो पानी निकले, सोने की हो तो दूध निकल आये। टोंटी से कोई फर्क नहीं पड़ता, जो उसके अंदर भरा है वही निकलेगा। यदि तुम्हारे बर्तन में बर्फ है उसे हाथ में भी ले लोगे तो हाथ ठंडे हो जायेंगे, उसमें यदि अग्नि भर दी है तो हाथ में लोगे तो हाथ भी गर्म हो जायेंगे। किसी बोरे में फूल भरे हों वह बोरा गाड़ी में भी रखा हो तो जहाँ से गुजरेगा आस-पास को महकाता हुआ ही निकलेगा यदि उसी माँस गाड़ी में जा रहा हो तो आस-पास का वातावरण दूषित हो जायेगा। जो है वही निकलता है अन्यथा कुछ भी नहीं होता।

हम आपको बताना चाह रहे हैं कि भोजन का कैसा प्रभाव होता है। कोई भी व्यक्ति मट्ठा पीकर के दूध की डकार नहीं ले सकता,

मीठा खाकर के मिठास मुँह में बनी रहती है, खट्टी चीज का तो नाम लेने से ही मुँह में पानी आ जाता है, खट्टी वस्तु खाकर के बहुत समय तक दाँत भी खट्टे बने रहते हैं ये सब बातें आप व्यवहार में जानते हैं ऐसा होता है। कभी भी हींग में से कपूर की गंध नहीं आयेगी और प्याज के बोरा में से फूल की खुशबू नहीं आयेगी। हमारा शरीर भी एक बोरा मान लो, हम इसमें जो कुछ भी डालेंगे इसमें से वही निकलकर आयेगा, किसी व्यक्ति ने अपने उदर में अभक्ष्य पदार्थ डाल दिया तो परिणाम भी अभक्ष्य रूप अन्याय, अनीति, अत्याचार रूप होंगे। यदि इसमें भक्ष्य पदार्थ डाल दिया तो परिणाम सदाचार रूप, नीति न्याय रूप, धर्मरूप, संयम रूप परोपकार-वात्सल्य मैत्री रूप होंगे क्योंकि भोजन का प्रभाव पड़ता है, शरीर पर भी पड़ता है, वचनों पर भी पड़ता है और मन पर भी पड़ता है इतना ही नहीं आत्मा पर भी पड़ता है।

यदि कोई व्यक्ति पौष्टिक भोजन करता है तो शरीर पुष्ट हो जाता है, यदि कोई व्यक्ति रूखा-सूखा भोजन करता है तो शरीर भी क्षीणकाय हो जाता है, यदि कोई व्यक्ति सुमधुर भोजन करता है तो प्राय:कर उसकी वाणी मधुर होती है, इसीलिये कहा भोजन के अंत में मीठा खाना चाहिये वह पाचक भी होता है, मिष्ट भी होता है। परिणाम को विशुद्ध करेगा, वह मीठा तुम्हारा साता वेदनीय कर्म का प्रत्यय/कारण बन जायेगा, उससे चेहरे पर प्रसन्नता आ जायेगी और यदि तुमने मट्ठा पिया है तो वह दर्शनावरणी कर्म का प्रत्यय बन जायेगा नींद ज्यादा आयेगी उस कर्म का आश्रव बंध होगा।

महानुभाव ! भोजन का प्रभाव शरीर पर पड़ा, भोजन का प्रभाव वाणी पर भी पड़ा। जो व्यक्ति भोजन करके आये तो संभव है छोटी-मोटी बातों को सहन कर जायेगा और मिष्ट ही बोलेगा और जो व्यक्ति सुबह से लेकर शाम तक काम कर रहा है और उसकी पत्नी

ने मन के प्रतिकूल भोजन परोस दिया, जो उसे पसंद नहीं ऐसी सूखी सी रोटी, गंदी सी सब्जी घी-नमक नहीं उसे गुस्सा आ गया तो पत्नी के लिये कड़वे वचन ही बोलेगा। उस भोजन को देखकर शब्द अशुभ निकलेंगे तो खाकर के शुद्ध कैसे निकल आयेंगे और यदि उसकी पत्नी ने उसके मनोनुकूल व्यंजन बनायें हों किन्तु सरप्राइज दिया तो उसकी प्रसन्नता का पार नहीं वह अपनी पत्नी को वचनों से भी धन्यवाद दे रहा है, आँखों से दे रहा है, भावों से दे रहा है। अब वे अच्छे शब्द कहाँ से आ गये? सब भोजन का प्रभाव है।

भोजन अच्छा है तो शरीर निरोगी रहेगा, भोजन खराब है तो शरीर रोगी रहेगा। भोजन अच्छा है तो वाणी अच्छी निकलेगी, खराब है तो वाणी भी खराब निकलेगी। इसलिये पहले वैद्य-डॉक्टर कम होते थे, जो होते थे वे औषधि कम देते थे बस भोजन में ही सुधार करते थे पहले से ही सूचना हो जाती थी अब ये अमुक फल सब्जी नहीं खाना और अब इसे खाना है। और यदि किसी गाँव में कोई व्यक्ति रोगी हो गया वैद्य की आज्ञा मानने के बावजूद भी तो राजा उस रोगी को सजा नहीं देता था, वैद्य को सजा देता था।

जिस प्रकार शास्त्रों में दिया है आचार्य उस साधु के प्रति करुणा-दया-सान्त्वना का भाव तो बाद में रखेंगे, यदि साधु रोगी हुआ है तो उसे बुलाओ उसे प्रायश्चित दो, रोगी क्यों हुए? तुम सात्विक आहार करने वाले क्या तुमने आरोग्य शास्त्र नहीं पढ़ा, यदि नहीं पढ़ा तो मुनि कैसे बने?

आचार्य विद्यानंद जी मुनिराज सुनाते हैं। आरोग्य शास्त्र पढ़े बिना मुनि बनना ही नहीं चाहिये। जो अपने पेट को नहीं समझ पाया वह दुनिया में किसको समझ पायेगा। पेट कोई लेटर बॉक्स नहीं है शुभ-अशुभ सभी समाचार इसमें डालते जाओ। इसमें सब कुछ नहीं आ सकता। आप अपने बर्तन में कीचड़ नहीं भरना चाहते तो उदर में

क्यों। दूसरी बात ये भी सोच लो ये तो तुम्हारी आत्मा का मंदिर है इस मंदिर में गंदी वस्तुयें नहीं चढ़ायी जातीं, अच्छी वस्तुयें चढ़ायी जाती हैं। तो भोजन जैसा भी दिया जाता है उसका प्रभाव शरीर पर, वचन पर, मन पर व आत्मा पर पड़ता है।

आप ठंडा पानी पीकर आओ, पेट पर हाथ लगाओ ठंडा लगेगा, गर्म पानी पीकर आये तो पेट गर्म सा लगेगा, भोजन ठोस लेकर आये तो पेट ठोस हो जाता है अँगुली लगाओ तो दबेगा नहीं और भोजन यदि नर्म, पानी-खिचड़ी या फलादि ग्रहण किया तो पेट भी नर्म रहता है ये प्रभाव शरीर पर पड़ा।

वाणी पर प्रभाव-जो व्यक्ति नीरस भोजन करता है उसकी वाणी रूक्ष हो जाती है उसके स्वभाव में चिड़चिड़ापन आ जाता है, इसलिये गृहस्थों के लिये कहा कि भोजन तो सरस करो यदि तपस्या करनी है तो उपवास करो अष्टमी-चतुर्दशी का उपवास करो। नीरस गृहस्थों को नहीं बताया क्योंकि तुम्हें गृहस्थी में रहना है और नीरस करोगे तो चिड़चिड़े हो जाओगे यदि नीरस करना है तो तब करना जब गृह त्याग करने का मन में ठान लिया हो। सरस भोजन करने से परिणाम भी सरस रहते हैं।

महानुभाव ! कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो भोजन के माध्यम से ही शरीर के रोग को ठीक कर लेते हैं। जुकाम-खाँसी में घरेलु नुस्के अपना कर खा-पीकर ठीक कर लेते हैं। यदि किसी को गुस्सा आ रहा हो तो कहते हैं भाई ! इसे पानी पिलाओ, क्यों? क्या उस पानी का गुस्से से कोई संबंध है? यदि आप किसी दुकानदार के पास या किसी कम्पनी में गये तो सामने वाला पहले तुम्हें चाय-पानी पिलाता है तब चर्चा शुरू करता है। अच्छे से बात बन जाये अन्यथा हारा-थका वह आया, तुम भी हारे-थके गये तो फिर बात बनेगी नहीं, बनी बनायी बात भी बिगड़ जायेगी। जब व्यक्ति चर्चा करने के लिये बुलाता है तो

ये नहीं कहता पहाड़ की चोटी पर आ जाना, किसी ऐसे स्थान पर बुलायेगा जहाँ ठंडक हो या मौसम अनुकूल हो उसका मन जहाँ संतुष्ट हो वह स्थान नियत किया जाता है क्योंकि तुम्हारा मन उसके काबू में आ गया तो तुम्हारे मन पर उसका अधिकार हो गया। वह जो वस्तु खरीदना या बेचना चाहता है डीलिंग ऐसी करेगा कि आप ना कर ही नहीं सकते।

प्रभाव तो पड़ता है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के एक सर्वे रिपोर्ट में आया 200 देशों में लगभग डेढ़ करोड़ व्यक्ति प्रतिवर्ष अनछने जल के कारण मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। अनछने जल के कारण इतने रोग पैदा हो जाते हैं कि इतने व्यक्तियों की मृत्यु हो जाती है। भोजन का प्रभाव शरीर पर कैसे पड़ता है तो जापान की एक महिला ने किसी शरीर का शोध करने वाले डॉक्टर से पूछा क्या आप मेरी आयु बता सकते हैं। उस डॉ. ने कहा आपकी आयु लगभग 25 वर्ष की होगी, उस महिला ने कहा ठीक है आपकी पकड़ अच्छी है आपने मुझे बालिका माना किन्तु मेरे पास तो 22 साल का बेटा, 21 साल की बेटी है उसका क्या, मेरी आयु 45 वर्ष की है। डॉ. यह सुन हैरान हो गए बोले ये कैसे संभव है। तब महिला ने बतया मैंने जीवन में कभी बासी भोजन नहीं किया, मैं शुद्ध सब्जी खाती हूँ, अपने हाथ से बना ही खाती हूँ कभी गंदी-संदी वस्तुयें नहीं खायीं कभी बाजार की पैकेट की वस्तुएँ नहीं खायीं इसलिये मैंने आपको भी अपनी आयु के संदर्भ में भ्रम में डाल दिया।

महानुभाव ! शुद्ध खान-पान का प्रभाव पड़ता है। जंगलों में रहने वाले साधु, पहाड़ की चोटी, नदियों के किनारे रहने वाले साधु नगरों से बहुत दूर जहाँ कोई प्रदूषण नहीं है, न भूमि प्रदूषण है, न जल प्रदूषण, न वायु प्रदूषण, न कोई वैचारिक प्रदूषण है कोई प्रदूषण नहीं सभी प्रदूषणों से रहित शिखर जी की चोटी पर पहुँचकर तीर्थंकरों ने

मोक्ष को प्राप्त कर लिया। जंगलों में रहने वाले साधक 2-4-8 दिन का उपवास तो सहजता में कर लेते हैं, बस्ती में रहकर उपवास करना थोड़ा कठिन है। ऑक्सीजन की जितनी हमें आवश्यकता है उसका 1-2% भी हम इन शहरों में ले नहीं पा रहे। वैज्ञानिकों के अनुसार एक व्यक्ति के लिये 5 एकड़ जमीन में जितने पेड़ लग जायें उतने पेड़ों से उत्पन्न होने वाली ऑक्सीजन एक व्यक्ति के जीवन के लिये चाहिये, वह व्यक्ति कभी रोगी नहीं हो सकता।

हिमालय पर रहने वाले दिगम्बर संत जिन्हें कहते हैं वातरसना। वो केवल ऑक्सीजन का ही आहरण करते हैं और ऑक्सीजन से ही शरीर में जितनी टूट-फूट होती है उनकी मरम्मत हो जाती है। उसके माध्यम से रोगों का निदान हो जाता है। ठंडे प्रदेशों में रहने वाले व्यक्तियों की आयु दीर्घ होती है, ठंडे प्रदेशों में रहने वाले आज भी 100-120 वर्ष के मनुष्य हर सौ व्यक्तियों के बीच में एक-दो मिल जायेंगे। यहाँ पर एक हजार में एक भी मिलना मुश्किल है। दस हजार में भी एक मिलना मुश्किल है जिसकी आयु 120 साल की हो, हो सकता है एक लाख व्यक्तियों के बीच भी निकलना मुश्किल हो। जो ऊष्ण प्रदेश होते हैं वहाँ के मनुष्यों को इतना शीतल पेय नहीं मिल पाता इसलिये गर्म भोजन करने से उनकी आयु भी कम होती है और गर्म-तीखा भोजन स्वास्थ्य के साथ-साथ परिणामों के लिये भी हानिकारक होता है।

माँसाहारी कोई व्यक्ति भगवान की भक्ति करने में प्रसिद्ध हुआ हो तो बताओ, माँसाहारी कोई उपासक या उच्चकोटि का संत महात्मा बना हो तो बताओ, एक भी नहीं मिलेगा। शाकाहारी व्यक्ति, सात्विक भोजन करने वाला व्यक्ति ही आत्मा को जानने में समर्थ हो सकता है, जो दूसरे की आत्मा को नहीं जानता वह अपनी आत्मा को कैसे जान पायेगा।

क्षत्रियों ने अहिंसा धर्म को स्वीकार किया, पहले वे तामसिक भोजन करते थे बाद में राजसिक भोजन किया किन्तु जब उन्होंने आत्मा को जाना तो पुनः तामसिक व राजसिक भोजन का त्याग कर सात्विक भोजन ग्रहण किया। ब्राह्मणों को क्रियाकाण्डी कहा जाता है, वे खानपान की शुद्धि करते हैं, ब्रह्मस्वरूपी आत्मा को जानने में सिर्फ वे ही समर्थ होते हैं, क्योंकि खान-पान शुद्ध होता है, इसलिये वो ब्राह्मण कहलाते हैं। ब्राह्मण का आशय है ब्रह्मवेत्ता। ब्रह्म स्वरूपी आत्मा को वही जान सकता है, जिसने परमात्मा को जाना हो, परमात्मा की उपासना भक्ति-पूजा-वंदना आदि की हो इसके अलावा कौन जान सकता है। ब्राह्मण ब्रह्म स्वरूपी ब्रह्मवेत्ता होते हैं, ब्रह्म का वेत्ता कोई पशु या माँसाहारी नहीं हो सकता, ब्रह्मस्वरूप को जानने वाला कोई रात्रि में भोजन करने वाला नहीं हो सकता। रात्रि में चलने वाला और रात्रि में चरने वाला दोनों ही निशाचर हैं। 'चर' धातु चलने व चरने दोनों के अर्थ में आती है। भोजन व गमन दोनों के अर्थ में आती है। निशा में जो चरता व चलता है वह पशुवत् है। धर्मात्मा व्यक्ति संत-साधु रात्रि में विहार नहीं करते दिन में सूर्य के प्रकाश में गमन करते हैं और तभी भोजन करते हैं।

भोजन का बड़ा विज्ञान है जितना शुद्ध आप ग्रहण कर रहे हैं संभव है तुम्हारे परिणाम उतने शुद्ध होंगे, शरीर स्वस्थ रहेगा, वचन प्रभावक, सौम्य शिष्ट-मिष्ट हित-मित-प्रिय निकलेंगे और मन के विचार शुद्ध-शुद्धतर होते चले जायेंगे और आत्मा भी कर्मों से जल्दी मुक्त होगा। महानुभाव ! आप कहेंगे कई बार ऐसा भी तो देखा जाता है कि जिस व्यक्ति ने जीवन में कभी शराब की बोतल नहीं छूयी, अण्डा-माँस नहीं खाया, तम्बाकू बीड़ी-सिगरेट का सेवन नहीं किया फिर वह व्यक्ति कैंसर से क्यों मरा, बताओ तो सही? वह इसलिये मरा उसने शाकाहारी भोजन तो किया, किन्तु उसे भी माँस बनाकर

किया। टी.वी. खोलकर बैठ गया, समाचारों की वर्गणायें उस पर पड़ रही हैं, अखबार पढ़ रहा है जितनी भी खून-खराबे लूट-पाट की खबरें पढ़ रहा है, एक्सीडेंट देखता है वह सब वर्गणायें चाय के कप के साथ तुम्हारे अंदर जाती चली जा रही हैं और आप जानते हैं विज्ञान की बात, कि शरीर के अंदर जितनी ग्रंथियाँ हैं प्रत्येक ग्रंथी से कोई न कोई हॉर्मोन्स अवश्य निकलता है।

हम जैसे वातावरण में रहते हैं उस वातावरण से वह ग्रंथी प्रभावित होती है, केवल खान-पान से प्रभावित नहीं होती। डॉ. कहेंगे आपके शरीर में जिस चीज की कमी है उस वस्तु को अलग से खाओ किन्तु धर्म शास्त्र कहते हैं बाहर से खाने की आवश्यकता नहीं है तुम्हारे अंदर ग्रंथि है जिस चीज की कमी आ जाये उस ग्रंथि को समझो कार्य नहीं कर रही है उसे कार्यान्वित करो। यदि वह एक्टिव होगी तो तुम्हें बाहर से कुछ लेने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी, उसमें से हार्मोन्स स्वयं स्रवित हो जायेंगे। उसके लिये समस्त प्रकार के परिणामों की आवश्यकता है। गृहस्थ जीवन में सब प्रकार के परिणाम होते हैं, सब रस होना चाहिये। नवरस होना चाहिये। हास्य भी होना चाहिये, प्रमोद रस, करुण रस, शांत रस, वात्सल्य रस, वीर रस आदि सब होने चाहिये। गृहस्थ में कभी क्रोध भी आ रहा है, कभी हँसी भी आ रही है, कभी प्रेम उमड रहा, कभी देश भक्ति जाग्रत हो रही है तो उसकी ग्रंथियाँ सब एक्टिव रहेंगी किन्तु सबकी एक लिमिट है। लिमिट के बाहर हो गये तो अतिरेक हो जायेगा, अतिरेक भी नहीं होना चाहिये।

साधु जीवन में प्राय:कर शांतरस ज्यादा रहता है, वैराग्य की भावना ज्यादा रहती है इसीलिये वे उपवास कर लेते हैं। और शांति के परिणाम जब रहेंगे तो अंदर का जल सूखेगा नहीं, जलेगा नहीं, वह नीरस भोजन करके भी अपनी शांति को भंग नहीं होने देंगे। उनका

वैराग्य ही बढ़ेगा, रूक्षता बढ़ेगी, लोगों के प्रति उपेक्षा-बढ़ेगी, अपेक्षा का भाव नहीं दिखेगा। फिर वह साधु उस रूखे-सूखे आहार में अमृत की कल्पना करके आहार लेता है, उस साधु का मन परमात्मा की भक्ति में, आत्मा की खोज में लगेगा, नियम से लगेगा। साधु यदि आहार गृद्धता पूर्वक ले सोचे गर्म-गर्म, अच्छा घी नमक सहित मिले यदि ऐसी सोच के साथ, उस भावना के साथ आहार लेगा तो आहार करते-करते मन में चंचलता आ रही है तो सामायिक करने में भी मन स्थिर नहीं होगा। आहार में निर्लेपता है तो सामायिक भक्ति-पूजा पाठ में भी आनंद आयेगा। यदि आहार में गृद्धता है तो पूजा करते हुए भी संसार के प्रति गृद्धता रहेगी।

आप किसी होटल में भोजन करने गये, उस होटल में लिखा है कि यहाँ पेटभर भोजन 20 रु. में दिया जाता है, तो होटल वाला सोचेगा कि एक रोटी कम खाये तो अच्छा रहेगा और यदि वहाँ पर रोटी के हिसाब से पैसे लिये जाते हैं 4 रोटी के 20 रु., पाँचवी अलग खाओगे तो 5 रु. अलग से लगेंगे वह सोचेगा जितनी ज्यादा खायें उतना अच्छा है जिससे मैं पैसा ज्यादा कमा सकूँ और यदि थाली रेट फिक्स है तब सोच और अलग प्रकार की होगी। होटल में भोजन करने वाला व्यक्ति जीवन में कभी उदारता के साथ दान दे नहीं सकता, पैसा कमाने की ही भावना रहेगी, ध्यान रखना वे व्यक्ति दानी नहीं मिलेंगे। दानी वही हो सकता है जो घर का बना भोजन खाये और माँ के हाथ का बना भोजन करने वाला जितना दान दे सकता है, हो सकता है पुत्रवधू के हाथ का बना भोजन करने वाला न दे पाये। माँ जब भोजन बनाती है तो सोचती है मेरा बेटा एक रोटी और खाये, उसे खुशी होती है ज्यादा-ज्यादा खिलाना चाहती है उसमें उदारता की भावना रहती है तो खाने वाले की भावना में भी उदारता आती जाती है।

पहले समय में महिलायें गेहूँ भी पीसती थीं तो भजन पढ़ते हुये पीसती थीं, खाना बनाते समय भी स्तुति-पाठ आदि पढ़ती जाती थीं बड़ी शुद्धि के साथ कार्य करतीं। क्षेत्र की शुद्धि, द्रव्य की शुद्धि, भावों की शुद्धि और काल शुद्धि करतीं तब वह चौका होता था। जिसमें ये चार शुद्धि नहीं तो काहे का चौका। महानुभाव ! ''शुद्धि का हमारे परिणामों की विशुद्धि पर बड़ा प्रभाव पड़ता है।'' हमारे जीवन में उन सभी शुद्धियों की परमावश्यकता है। आप लोग सोचते होंगे भोजन का भजन पर क्या प्रभाव पड़ता है।

हम समझते हैं भोजन का भजन पर सीधा प्रभाव पड़ता है। जिस दिन आपने उपवास किया हो उस दिन आप अपने परिणाम देखो, उपवास करके व्यक्ति के अब्रह्म सेवन के परिणाम नहीं होते किन्तु बाजार का सामान खाकर व खिलाकर परिणाम अच्छे नहीं होंगे। जो माता-पिता अपने बच्चों को बचपन से ही उन खाद्य पदार्थों की आदत डाल देते हैं वे बच्चे शीघ्र ही कुसंस्कारों के शिकार हो जाते हैं उन बच्चों का मन संयमित नहीं रह पाता। बचपन से ही यदि बच्चों पर अंकुश किया जाये उन्हें अधिक से अधिक घर का बना भोजन व्यंजन दिये जायें तो बच्चा कभी बिगड़ेगा नहीं।

घर की रोटी खायेगा तो बच्चा घर में रहेगा, बाहर की रोटी खायेगा तो बच्चा बाहर ही रहेगा। कई बार माता-पिता कहते हैं अब बेटा हमारे हाथ में नहीं रहा, क्यों नहीं रहा? क्योंकि बेटे को तुम्हारे हाथ की रोटी नहीं मिली, किसी और के हाथ का मिला है, गंदा-संदा पैकेट का भोजन खाया है। यदि घर में महिला अशुद्धि से हो जाये तो उससे दूर रहते हैं छूते नहीं परछाई भी न पड़े वह एक कोने में बैठी रहती है और जो सामान बाजार से आ रहा है वह कैसा आ रहा है? सूतक का है या पातक का, उसमें कितनी अशुद्धि है। अशुद्ध महिला की यदि छाया भी पड़ जाती है तो आप कहते हैं पापड़ आदि तक काले पड़ जाते हैं।

जा तन की छांई पडे अंधो होत भुजंग।
तुलसी बाकी कौन गति, जो नित नारी संग।।

यदि अशुद्धि के समय स्त्री की परछाई सर्प के ऊपर पड़ जाये तो सर्प अंधा हो जाता है और अशुद्धि के समय जो पुरुष उसके हाथ का बना भोजन खाये, उसके साथ रहे और सोचे उसकी बुद्धि उच्च हो जाये, शरीर स्वस्थ रहे तो यह कैसे संभव है। कैसे मान लें कि तुम्हारी वाणी व मन भी शुद्ध रहेगा तुम्हारा मन भजन में कैसे लगेगा।

जैन दर्शन की एक-एक क्रिया वास्तव में परम वैज्ञानिक है खान-पान का भी पूरा संबंध है। ये कोई बहलाने की बात नहीं। यह बहुत बड़ा विज्ञान है कोई भी वैज्ञानिक यदि खोज करता है तो कहेगा, जैन दर्शन में जो बात कही है वह सभी बात 100 टके की हैं, कही भी टंच भर उसमें अशुद्धि नहीं है। आप कहते हैं शाकाहार करने पर भी ये कैंसर क्यों हो रहे हैं, शाकाहार करने पर भी अन्य भयावह बीमारियाँ क्यों फैल रही हैं? इसलिये फैल रही हैं कि आहार करते समय परिणाम शुद्ध नहीं रहते। श्रीमति जी दिनभर की शिकायतें पतिदेव के भोजन के समय ही परोसतीं हैं, भोजन तो बाद की बात है।

हम शुद्ध भोजन के साथ-साथ परिणामों को भी शुद्ध बनायें परिणाम शुद्ध बनायेंगे तो उनका परिणाम अच्छा निकल कर आयेगा। बुरे परिणामों से किया गया भोजन बुरा परिणाम देने वाला होता है इसलिये कहते हैं कभी क्रोध आ रहा हो तो भोजन नहीं करना नहीं तो जहर बन जायेगा। आप देख लो जैसा बनना चाहते हो वैसा भोजन करना प्रारंभ कर दो।

जैसी खाये रोटी वैसी होगी बेटी।
जैसा होगा खान-पान वैसा होगा खानदान।

आप क्या खाते पीते हैं वह आप ही देखो। तुम्हारे पास क्या है वह छोड़ो, एक कौवा भी सात मंजिल के मकान पर बैठ सकता है तो वह कौवा अच्छा नहीं हो गया, क्योंकि वह गंदगी खाता है। कोयल भले ही रंग की काली है वह आम्र रस पीती है वह कोयल मीठा बोलती है।

कहने का आशय है हमें अपना परिवार सुधारना है तो खान-पान सुधारना हेगा। भगवान् की भक्ति करना है तो खानपान सुधारना होगा, जीवन में यदि आरोग्य लाभ प्राप्त करना है तो खान-पान सुधारना होगा, यदि हमें मोक्ष प्राप्त करना है तो खान-पान सुधारना होगा।

'आचारो पढमो धम्मो'

आचार प्रथम धर्म है। आचरण की नींव आहार है। आहार शुद्धि के बिना मन-वचन-काय की शुद्धि नहीं होती, मुनिमहाराज तक के परिणाम समल हो सकते हैं, परिणामों में विकृति आ सकती है।

एक बार एक मुनिराज अंगारक सेठ के यहाँ आहार करने गये। सेठ ने खूब अच्छे से आहार कराया और आहार के बाद वे एक हार लेकर चले आये। आहार लिया सो लिया, कमण्डल में एक स्वर्णाहार भी डालकर ले आये। सेठ को बड़ा खराब लगा, मेरे यहाँ और तो कोई आया नहीं, वह हार कौन ले गया। वह सेठ डरते-डरते महाराज के पास पहुँचा बोला, क्षमा करना महाराज! आज आपका मेरे यहाँ आहार हुआ ये बहुत खुशी की बात है किन्तु मेरे मन में एक विकल्प भी आ रहा है, जिसे कहकर मैं हल्का होना चाहता हूँ। हो सकता है मेरे तीव्र पाप कर्म का उदय हो, बहुत बड़ी हानि होने वाली हो वह छोटी सी हानि में टल गयी हो। मेरे यहाँ से पता नहीं कोई हार उठाकर ले गया है।

मुनिराज ने कहा-सेठ जी मुझे क्षमा करना तेरा हार लेकर के मैं ही आ गया था। ये ले अपना हार, मैं प्रायश्चित तो अपने गुरुमहाराज

के पास जाकर लूँगा किन्तु ये बता तूने जो मुझे आहार दिया, तेरा व्यवसाय क्या है? वह बोला महाराज क्षमा करना मैं रात्रि के अंतिम प्रहर में अपनी दुकान खोलता हूँ रात में जो लोग चोरी करके लाते हैं उनका माल मैं खरीद लेता हूँ। चोरी का माल मुझे सस्ते दामों में मिल जाता है। महाराज ने कहा-तेरे भोजन का, तेरी गलती का ऐसा प्रभाव पड़ा।

महानुभाव ! यह केवल किंवदंती नहीं है, हमने अपने जीवन में कई बार देखा है, जो व्यक्ति प्रसन्न होकर गद्गद मन से आहार देता है हमारा मन भी धर्म ध्यान में, स्वाध्याय आदि में खूब लगता है खूब विशुद्धि बढ़ती है और कभी-कभी दाता खूब आहार देता है उसके मन की निर्मलता नहीं है या हमारे मन की निर्मलता नहीं है तो वह आहार साधना की वृद्धि करने वाला नहीं होता है।

महानुभाव ! आपने भी देखा होगा कि कई बार आपकी भूख दो रोटी की रह जाती है और कई बार आप चार रोटी भी खा लेते हैं ज्यादा भी खा लेते हैं क्यों? क्योंकि खिलाने वाले का मन इतना उदार होता है इतना स्नेह-प्रेम वात्सल्य होता है कि पेट भर जाने के बाद भी वह दो ग्रास ज्यादा ही खिला देता है, यह फल भावनाओं का होता है। और जो व्यक्ति माँग-माँग कर खाये तो भूख ही मर जाती है और जो प्यार से खिलाता है तो रुचि आती है। ये बात ध्यान रखना जब दाता अच्छे मन से आहार कराता है तो साधु को औषधी लेने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती।

साधु भी अच्छे मन से यह सोचकर आहार करे कि आज तो मेरे पुण्य का उदय है आज मैं अमृत पी रहा हूँ। जो मुनिराज पानी को भी दूध मान कर पीते हैं उन्हें कालान्तर में क्षीरस्रावी ऋद्धि हो जाती है जो पानी को भी घी मान कर पीते हैं तो घृतस्रावी ऋद्धि हो जाती है, जो पानी की भी अमृत पान कर पीते हैं तो अमृतस्रावी ऋद्धि हो

जाती है उन्हें ऐसा लगता है जो उनकी ग्रंथियाँ हैं उनमें से किसी प्रकार का रस स्रवित होने लगता है और यदि किसी वस्तु को बुरे परिणामों के साथ लो तो परिणाम खराब रहते हैं।

अच्छे परिणाम तो तब होंगे जब अच्छी वस्तु अच्छी तरह से, सही समय व सही स्थान पर उचित मात्रा में अच्छे परिणामों के साथ खाओ। आज देख रहे हैं कि भोजन से भजन पर क्या प्रभाव पड़ता है। भोजन शुद्ध करना है जिससे हमारी आत्मा शुद्ध हो जाये। मन वचन काय व आत्मा भी शुद्ध हो क्योंकि अशुद्ध भोजन करके प्रभु परमात्मा की भक्ति का नाटक तो किया जा सकता है, प्रभु परमात्मा की सच्ची भक्ति पैदा नहीं की जा सकती। आप स्वयं अपनी आत्मा से पूछें-पर्यूषण पर्व में जो आपका मन भक्ति पूजा में लगता है वैसा अन्य दिनों में लगता है क्या। उस समय तो पानी भी शुद्ध, नमक भी शुद्ध वे 10 दिन आपको 355 दिन तक याद रहते हैं। इतनी विशुद्धि आपकी बढ़ती है और कई बार आप उन दिनों इतने निर्मल हो जाते हैं कि अपने विरोधी के भी पैर पकड़ कर क्षमा माँग लेते हैं, बड़े-बड़े त्याग कर देते हैं।

साधु भी यही चाहते हैं कि आपका कल्याण हो। आप हमारे कल्याण में निमित्त बनते हैं आहार बिना साधना कैसे करेंगे, आप हमें आहार देते हैं उससे हमारी साधना चलती है, उसका पुण्य भी आपको मिलता है किन्तु हम चाहते हैं वह पुण्य जब मिलेगा तब मिलेगा किन्तु तत्काल में जब आपने आहार दिया तब कुछ न कुछ त्याग किया। वह लाभ यह हुआ कि आपने अभक्ष्य वस्तु का त्याग किया। आपका जीवन भक्ष्य पदार्थों के साथ रह सकता है। क्या हम अभक्ष्य पदार्थों का त्याग कर देंगे तो जल्दी मर जायेंगे ? नहीं, हम और ज्यादा जीयेंगे, स्वस्थ-निराकुल रहेंगे।

अत: अभक्ष्य पदार्थों के त्याग से घबराओ मत, साधु तुम्हारे हित की भावना भाते हैं इसलिये तामसिक आहार, मादक आहार, प्रकृति विरुद्ध आहार, लोकनिंद्य आहार अथवा त्रसघातक बहु स्थावरों का घात करने वाला आहार ये पाँच प्रकार के अभक्ष्यों का त्याग कराते हैं। जमीकंद आदि तामसिक आहार कहलाते हैं। जमीन में रहने से उनमें इतनी ऊष्णता बढ़ जाती है कि खाने वाले के अंदर भी उष्णता बढ़ती है, सहनशक्ति नष्ट होती है। किसी वैज्ञानिक ने बताया कि जमीकंद खाने वाले व्यक्तियों की नसें कमजोर होती हैं और ज्वाइंट्स पेन प्रारंभ हो जाता है। आज व्यक्ति 40-42 वर्ष के होने के बाद कहते हैं दर्द रहता है तो हमने ऐसे व्यक्ति भी देखे हैं जो 80-85 वर्ष के हो गये न कहीं घुटने में दर्द है न कमर में क्यों? क्योंकि जीवन में कभी जमीकंद ही नहीं खाया, कभी रात्रि भोजन नहीं किया।

आचार्य शांतिसागर जी महाराज के गुरु सिद्धसेन महाराज थे, उनके बारे में एक बात सुनने में आयी-कि उन्होंने 105 वर्ष की उम्र में अपने पार्थिव शरीर का परित्याग किया और बताया जाता है 105 वर्ष तक भी उनके दाँत थे। शरीर में कोई भी रोग नहीं था और उस समय कुछ बाल भी श्याम रह गये थे। महानुभाव ! यह संभव हो सकता है क्योंकि उन्होंने 16 वर्ष की उम्र में ही सन्यास को स्वीकार कर लिया था, 89 वर्ष सन्यासी जीवन में रहे। आप सभी भी श्रावक हैं, उपासक हैं भोजन को शुद्ध बनाओ तुम्हारा भजन स्वत: शुद्ध हो जायेगा।

आप कहते हैं महाराजश्री जाप में मन नहीं लगता, पूजा-पाठ में नींद आ जाती है। कषायों की तीव्रता रहती है। कारण यही है कहीं न कहीं तुम्हारा आहार अशुद्ध है, वस्तु अशुद्ध है या आहार ग्रहण करने की विधि अशुद्ध है। स्थान अशुद्ध, समय अशुद्ध है या आपके परिणाम अशुद्ध हैं बिना अशुद्धि के तुम्हारे जीवन में अशुद्ध परिणाम होगा कैसे ? कोई कुछ भी करे गेहूँ बोकर चना नहीं काट सकता, चारों

प्रकार की शुद्धि से आपने जो भी आहार किया है परिणाम निःसंदेह निर्मल ही होंगे। उपवास करके जब पूजा-पाठ में मन लगता है तो शुद्ध आहार करके भी मन लगेगा ही लगेगा।

एक संकेत आपके लिये कि कम से कम भोजन व भजन के समय कभी मोबाइल का स्विच ऑन नहीं करना चाहिये, उतनी देर तो कम से कम शांति से रहना चाहिये और आचार्यों ने तो यहाँ तक कहा कि आहार के समय मौन रहना चाहिये मुस्कान के साथ भोजन करें और आहार कराने वाले भी हँसते मुस्कुराते भोजन करायें। यह मानकर आहार करें कि हम अमृत के समान आहार ले रहे हैं तो निःसंदेह कभी औषधि खाने-खिलाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

तुम्हारा 35% धन शरीर को निरोगी बनाने में खर्च होता है, किसी का इससे ज्यादा भी खर्च होता होगा, कम भी हो सकता है। यदि अच्छी भावना से भोजन करोगे-कराओगे तो मैं समझता हूँ 35% तो बड़ी बात है 3-5% भी तुम्हें औषधि पर खर्च नहीं करना पड़ेगा। शुद्धि का ध्यान रखो केवल द्रव्य की शुद्धि नहीं, भावों की शुद्धि भी अत्यन्तावश्यक है। मटके में मट्ठा रखा था, उसे खाली करने के बाद भी उसमें गंध आती है यदि तुम्हारे पेट में भोजन पहुँच गया तो भोजन जाते ही सभी ग्रंथियाँ, सभी मशीन एक्टिव हो गयीं उसमें से हार्मोंस बनना प्रारंभ हो गया। रात्रि में भोजन करने से पित्त कमजोर हो जाता है, पाचन शक्ति कमजोर हो जाती है फिर वह भोजन अमृत नहीं बन पाता गैस कब्जादि बनने लगती है, रोग का कारण हो जाता है इसलिये भोजन की शुद्धि बहुत जरूरी है। प्रकृति से हमें कुछ तो सीख लेना चाहिये। पशु पक्षी भी रात्रि में भोजन नहीं करते, वृक्ष भी दिन में सूर्य के प्रकाश में अपना भोजन बनाते हैं।

महानुभाव ! क्या हम इस प्रकृति से सीख नहीं सकते ? सीख लेना चाहिये, बुद्धिमानी इसी में है अच्छी बातें जहाँ भी हो ग्रहण करने योग्य होती है।

''उत्तम विद्या लीजिये जदपि नीच पे होय।
पड़ो अपावन ठोर पे कंचन तजे न कोय।।

उत्तम शिक्षा कहीं से भी मिले उसे ग्रहण करना चाहिये। वृक्षों को कभी खाँसी-जुकाम नहीं होता, प्राकृतिक प्रकोप से नष्ट हो जायें तो बात अलग है अन्यथा वृक्ष 100-100 साल तक जीते हैं। जंगल में कहीं कोई इन्जेक्शन नहीं लगते। अपने बच्चों को गमलों के पौधे न बनाओ जंगल का पेड़ बनाओ। तुम अपनी आत्मा में से हर औषधि उत्पन्न करने की चेष्टा करो जैसे श्वान घाव हो जाने पर अपनी जीभ से चाट कर उसे ठीक कर लेता है, इसी प्रकार प्रकृति ने प्रत्येक जीवधारी के शरीर की रचना ऐसी ही की है। उसके शरीर में जितने अंग है उतनी औषधियाँ भी उसके शरीर में भर दी हैं, बाहर से औषधि की आवश्यकता नहीं। 5 करोड़ 68 लाख 99 हजार 584 रोग शरीर में है, तो इतनी औषधि तो कम से कम हैं और फिर एक-एक रोग की कई-कई औषधि भी हो सकती हैं।

महानुभाव ! उन औषधियों को अंदर से प्रकट करने की हम चेष्टा करेंगे तब नि:संदेह हम आरोग्य अवस्था को प्राप्त हो जायेंगे। इतना ही नहीं तुम ऐसे मुनिराज बन जाओगे कि तुम्हारे शरीर से संस्पर्शित हवा भी किसी रोगी को लग जायेगी तो रोगी भी निरोगी हो जायेगा। अपने जैन दर्शन में ऐसी ऋद्धियाँ दी हैं, ये कोई कल्पना मात्र नहीं हैं। मुनिराज का मल, क्ष्वैल, स्वेद आदि भी औषधि का कार्य करता है ये उनकी वर्गणा का प्रभाव है, उनकी विशुद्धि का प्रभाव है। ये असंभव नहीं है।

आज आपसे इतना ही कहना चाहते हैं अपने भोजन-पान को शुद्ध बनाओ इससे आपका शरीर-वचन-मन जीवन सभी कुछ शुद्ध होगा, तुम्हारा पारिवारिक-सामाजिक माहौल भी परिशुद्ध होगा। यदि खाने की अशुद्धि दूर कर दो तो सब अशुद्धि निकल जायेगी।

विदेशियों ने भारतीयों को अशुद्ध भोजन दे देकर लूटा है आज भी लूट रहे हैं पहले बुद्धि भ्रष्ट कर दी फिर चाहे उस मनुष्य को गधा बनाओ या घोड़ा या बैल बनाकर जोतो। जब तक बुद्धि रहेगी तब तक विदेशी उसे पकड़ नहीं सकते, यदि किसी बुद्धिमान को पकड़ना है तो उसकी बुद्धि को भ्रष्ट कर दो और बुद्धि भ्रष्ट होती है अशुद्ध खान-पान से। आपको यही समझाना चाहते हैं कि अशुद्ध खान-पान से बचने की चेष्टा करो यदि तुम्हें अपना जीवन प्रिय है तो। यदि अशुद्ध भोजन से बच गये तो पाप से बच गये, नरक से बच गये, दु:खों से बच गये। यदि तुम्हें अशुद्ध भोजन से प्रीति है तो समझो तुम्हें अभी संसार से भीती नहीं हुयी आत्मा की प्रतीती नहीं हुयी है।

अत: अशुद्ध भोजन को छोड़कर ही भजन में मन लगेगा, वह भजन ही हमें परमात्मा की दशा को प्रदान करायेगा। इन्हीं सद्भावनाओं के साथ...

।। श्री शांतिनाथ भगवान की जय ।।

१०. ''आत्मा का संगीत''

महानुभाव ! जितने भी वाद्ययंत्र तार आदि से निर्मित होते हैं वीणा, तम्बूरा आदि यदि उनमें गाँठ होती है तो स्वर सही नहीं निकलता यदि उसकी गाँठ खुल जाती है तो स्वर सही निकलने लगता है। गाँठ संगीत में बाधक है। कोई मृदंग आदि में थाप देते हैं यदि गाँठ पड़ रही हो तो आवाज शुद्ध नहीं निकलेगी। यदि मिट्टी का कलश भी है उसमें छोटा सा छेद भी है या कहीं कंकड़ फँसा हुआ है तो आवाज शुद्ध नहीं आयेगी। और भी कोई वाद्ययंत्रों में कहीं भी कोई भी खराबी है तो उनसे स्वर सही नहीं निकलेगा, वह बीच-बीच में अटक-अटक कर आयेगा और अटक-अटक कर जिसे प्राप्त किया जाता है वह संसार के कार्यों का फल होता है। मोक्ष तो बेअटक निराकुल होता है, उसमें कोई बाधा नहीं होती इसीलिये मोक्ष प्राप्त जीवों को निराबाध सुख होता है।

भगवान महावीर स्वामी को 'णिग्गंठ बुद्ध' कहा जाता है। वे निर्ग्रंथ थे, ग्रंथियों से रहित थे उनके पास अंतरंग व बाह्य में कहीं ग्रंथी नहीं थी इसीलिये वे आत्मा का संगीत प्राप्त करने में, संगीत बजाने में, संगीत का आनंद लेने में समर्थ हो गये। जिनके पास कोई भी ग्रंथी होती है कोई भी बंधन होता है तब तक स्वतंत्रता का सुस्वाद व आनंद नहीं लिया जा सकता। परतंत्रता संसार में सबसे बड़ा दु:ख है। व्यक्ति स्वतंत्र रहकर के सूखी रोटी को भी चैन से खा सकता है, परतंत्रता की खीर-पूड़ी उसे न चाहिये।

पहले एक जमाना था जब व्यक्ति अपने एक-दो बीघा खेत में खेती करके अपने परिवार का पालन पोषण कर लेता था, नौकरी करना पसंद नहीं करता था उसे स्वतंत्रता प्रेय थी। उस जमाने में राजा, महाराजा, प्रजा सभी वृद्ध अवस्था में या प्रौढ अवस्था में सन्यास को

स्वीकार करते थे अपनी शक्ति के अनुसार संयम आदि को स्वीकार कर अपनी आत्मा का कल्याण करते थे क्योंकि उन्होंने अपना जीवन स्वतंत्रता के साथ जीया था और परम स्वतंत्रता को प्राप्त करने के लिये वे संयम ग्रहण करते थे। अब व्यक्ति जो सर्विस में रहता है वह अपने जीवन में बंधन के संस्कार डाल लेता है कहता है बंधन से ज्यादा सुख कहीं भी नहीं है, बस नौकरी करते रहो।

प्रत्येक माता-पिता की अभीप्सा होती है कि मेरा बेटा बड़ा बने, पढ़ लिखकर इंजीनियर बने, डॉक्टर-वकील बने या ऐसी पोस्ट पर पहुँचे जहाँ खूब नाम हो देश ही नहीं वह विदेश में भी पहुँचे। ये भावना जब वह परिवार या माता-पिता भाते हैं तो उनकी भावना भगवान् सुन लेते हैं माना कि उन्हें वरदान मिल जाता है और बेटे अच्छी ऊँची पोस्ट पर पहुँच जाते हैं विदेश भी पहुँच जाते हैं किन्तु वे माता-पिता को याद नहीं रखते, क्योंकि माता-पिता ने कभी ऐसी भावना नहीं भायी थी कि मेरा बेटा बड़ा होकर के मेरी सेवा करे, माता पिता ने ये नहीं सोचा था कि मेरा बेटा बड़ा होकर मेरे पास रहे, मेरा बेटा भारतीय संस्कारों से सहित हो। उसने सोचा मेरा बेटा ऐसा बने जो बाबू जी बनकर रहे, अधिकारी बनकर रहे, कभी ये नहीं सोचा सच्चा और अच्छा मानव बनकर के रहे, मेरा बेटा एक भला आदमी बनकर के रहे। बड़ा आदमी बनाने की जो भावना आयी वह इच्छा पूरी हुयी किन्तु भला आदमी बनाने की बात मन में कभी नहीं सोची।

एक व्यक्ति जिसका बेटा अमेरिका में रहता था, उसने वहीं शादी कर ली, उसका अच्छा पैकेज था। उसने एक पत्र अपने पिता के लिये लिखा पिता श्री! आपने बचपन से यही कहा कि मुझे बड़ा आदमी बनना है, अच्छी पढ़ाई करनी है विदेश जाना है, पिताजी आप भगवान से ये ही माँगते थे आपकी भावना पूर्ण हुई। और जब आज

आपको मेरी आवश्यकता है किंतु आज आपके लिये मेरे पास समय नहीं है आपने कभी मुझसे ये नहीं कहा कि वृद्ध अवस्था में तुम मुझे समय देना, आपने भगवान से नहीं माँगा कि मुझे मेरे बेटे की संगति मिले। जन्म के समय जैसे माँ चाहती है मेरा बेटा मृत्यु के समय मेरे पास हो, आपने चाहा ही नहीं कि आपके बेटे-बहू आपके पास हों। आपने जो भगवान से वरदान माँगा वह तो आपको भोगना ही पड़ेगा। मैं आपका अभागा बेटा पैदा हुआ हूँ। पिताजी मेरे पत्र को पढ़कर आप नाराज नहीं होना, बस ये सोचना कि इसमें मेरी गलती कहाँ है और आपकी गलती कहाँ है।

महानुभाव ! सत्य बात यही है पराधीनता में हमें सुख आने लगा है, इसलिये स्वाधीनता का संगीत हम बजाना चाहते ही नहीं। जिसे पराधीनता में आनंद आने लगा हो, जिसको जहर खाने में आनंद आने लगा हो अमृत की खोज वह क्यों करेगा। जो रुग्ण अवस्था में भी स्वयं को निरोगी मान बैठा हो वह निरोगी होने के लिये औषधि सेवन क्यों करेगा। जिसने अंधकार को ही प्रकाश मान लिया हो वह प्रकाश की खोज क्यों करेगा। जो रात्रि को ही दिन मानकर बैठ गया हो वह रात्रि का अन्वेषण क्यों करेगा। जिसने पुद्गल में ही आत्मा की कामना भावना बना ली हो ऐसा व्यक्ति आत्मा की खोज क्यों करेगा। जो व्यक्ति शरीर के शोषण को या शरीर के पोषण को, शरीर की वृद्धि या हानि को आत्मा की वृद्धि हानि, शोषण-पोषण मानता है शरीर के जन्म-मरण को आत्मा का जन्म-मरण मानता है वह आत्मा तक कैसे पहुँचेगा। किन्तु यहाँ तो हमें आत्मा तक पहुँचना है।

जब तक आत्मा तक नहीं पहुँचेंगे तब तक आत्मा का संगीत कैसे सुनेंगे। आपने अभी तक जिस आत्मा से संगीत का प्रोडक्शन होता है उस आत्मा को नहीं जाना तो आत्मा का संगीत कैसे मिलेगा। आपने अभी स्वर्ण को ही नहीं जाना कि वह क्या है तो स्वर्णाभूषणों

को कैसे प्राप्त करोगे। जिस मिट्टी से कलश बनता है, उस मिट्टी की ही पहचान नहीं है तो कलश कैसे प्राप्त करोगे। पहले साधन को जानना जरूरी है उसके बाद साध्य को प्राप्त करना होता है।

आत्मा एक शाश्वत द्रव्य है, इस संसार में अनादि काल से छः द्रव्य हैं जीव-पुद्‌गल-धर्म- अधर्म आकाश और काल। चार द्रव्य अनादि काल से शुद्ध हैं अनंतकाल तक शुद्ध रहेंगे इनमें कहीं भी कभी भी विभाव रूप परिणमन नहीं होता, न होगा, न हो सकेगा। जीव-पुद्‌गल दो द्रव्य ऐसे हैं जिनमें स्वभाव और विभाव परिणमन होता है। पुद्‌गल द्रव्य बेशर्म की तरह से है बार-बार स्वभाव अवस्था को प्राप्त करता है, बार-बार विभाव अवस्था को प्राप्त करता है। जीव एक बार स्वभाव अवस्था को प्राप्त करके पुनः कभी विभाव अवस्था को प्राप्त नहीं करता। आत्मा के बारे में हम जब तक नहीं जान पायेंगे तब-तक आत्मा की उपयोगिता और आत्मा की दशा को प्राप्त नहीं कर सकते।

आप कहेंगे आत्मा में संगीत कैसे पैदा हो सकता है, वाद्य यंत्रों से संगीत पैदा होता है आत्मा से कैसे संगीत पैदा होगा। आत्मा की एक विशेष दशा होती है जहाँ पर संगीत पैदा होता है, वह विशेष दशा हर समय नहीं हो सकती। जैसे हम आपसे कहें कि जल से संगीत पैदा होता है कोई भी वैज्ञानिक आकर के कहे ये रहा जल बताओ महाराज श्री संगीत कहाँ है। उस जल की बूंद का अन्वेषण करके आपने देखा, इसमें हाइड्रोजन के दो परमाणु ऑक्सीजन का एक परमाणु है इन जल बूंद में संगीत कहाँ है सब निरीक्षण करके देख लिया। ज्यादा कहें यदि सिद्धांत शास्त्रों से, विद्वानों से मिलें तो वे कहेंगे जल में शीतलता है, और किसी से मिलेंगे तो कहेगा जल का स्वभाव शीतलता है किन्तु उष्ण होने की भी इसमें क्षमता है। और किसी से मिलेंगे तो जल खारा भी होता है मीठा भी होता है। किन्तु

कोई भी व्यक्ति इस बात को स्वीकार करने को तैयार नहीं होगा कि जल में संगीत है।

जल और संगीत का कहाँ संबंध? जल अलग चीज है, संगीत अलग चीज है किन्तु जो व्यक्ति जल के समीप रहता है जल में प्रवेश कर चुका है, जल उसके अंदर प्रवेश कर चुका हैं बाहर से नहीं अंतरंग से। जिसने जल के स्वभाव को, जल की सभी दशाओं को जान लिया है वह कहेगा जल में संगीत है। जब पानी की बूंद पानी में गिरती है तब कौन सी आवाज आती है ? जब नाली में गिरती है तब कौन सी आवाज आती है? जब नदी सहज बह रही है तब कौन सी आवाज आ रही है ? नदी जब पहाड़ से गिर रही है तब कौन सी आवाज आ रही है, नदी जब बाढ़ का रूप ले रही है तब कौन सी आवाज आ रही है, नदी में जब उत्ताल लहरें उठ रहीं हैं तब कौन सी आवाज आ रही है और नदी में जब भँवर पड़ रहे हैं तब कौन सी आवाज आ रही है, नदी में जब कलश डुबोया तब कौन सी आवाज आ रही है ये अलग-अलग आवाजें किसकी हैं ? सभी जल की आवाजें हैं किन्तु ये आवाज जल का अन्वेषण करने पर नहीं मिलेंगी। ये विशेष कन्डीशन में पैदा होती हैं ऐसे ही आत्मा में से संगीत पैदा होता है।

आत्मा में संगीत है, आत्मा में संगीत नहीं होगा तो संगीत का आनंद कैसे लिया जा सकता है। आत्मा में सुख है तभी सुख लिया जा सकता है, शांति है, ज्ञान-दर्शन शक्ति है। जो आत्मा में है वह आत्मा में प्राप्त होगा किन्तु विशेष दशा पर। कनक पाषाण में कनक है किन्तु ऐसे नहीं मिल सकता विशेष दशा से प्राप्त होगा। गन्ने में शक्कर है किन्तु ऐसे नहीं मिलती। सबकी एक प्रक्रिया है, एक विशेष पर्याय प्राप्त होने पर वह दशा प्राप्त की जा सकती है।

महानुभाव ! आत्मा कैसी है, आत्मा चैतन्यमय है, आत्मा अमूर्तिक है, आत्मा शाश्वत है, आत्मा ज्ञान-दर्शन स्वभावी है जो

आत्मा जैसी है उससे उत्पन्न होने वाली चीज वैसी ही होगी। आप कहते हैं जैसा कारण होता है वैसा कार्य होता है। बाजरे के आटे से बाजरे की रोटी बनायी जाती है गेहूँ की नहीं। कारण के विपरीत कार्य देखने में नहीं आते, वीतरागी के पास पहुँचकर वीतरागता मिलती है और परमात्मा के पास पहुँचकर परमात्मा बनने का उपाय प्राप्त होता है, मार्ग प्राप्त होता है, व्यक्ति परमात्मा बन जाता है। अग्नि के कुण्ड में पड़ी हुयी लकड़ी स्वयं अग्नि बन जाती है और बर्फ के ऊपर रखा कोई पदार्थ बर्फ जैसा ठंडा हो जाता है। तो ये प्रभाव पड़ता है।

आत्मा में संगीत तो है किन्तु आत्मा जैसी है, संगीत भी वैसा ही होगा। आप कहेंगे आत्मा के संगीत के सात स्वर कौन-कौन से हैं। शब्दों के स्वर तो होंगे यदि आत्मा के सात स्वर मानेंगे तो वे चैतन्यमय होंगे, वे आत्मा के स्वर अमूर्तिक ही होंगे। बाहर के शब्दों को सुनने के लिये बाहर की इन्द्रियों की आवश्यकता पड़ती है ये सात स्वर सा रे ग म प ध नि जब इन्हें विशेष प्रकार से गाते हैं तो विभिन्न ध्वनियाँ निकलती हैं। तत्, वितत, घन सुषिर विशेष स्वर निकलते हैं। एक ही वाद्ययंत्र से नाना-प्रकार की ध्वनि निकाली जा सकती है, एक वाद्य यंत्र हजारों ध्वनि को पैदा कर सकता है। आप अपने मुख से भी नाना प्रकार की ध्वनि निकालते हैं। जब एक ही शब्द को आप अनेक प्रकार से बोल सकते हैं, आपका स्वराघात कहाँ जा रहा है उस स्वराघात से ही आपकी जिह्वा से रस निकलता है उसी से विष निकलता है। आपका स्वराघात जहाँ जा रहा है उन्हीं शब्दों से मित्रता भी हो सकती है उन्हीं शब्दों से झगड़ा भी हो सकता है। आप किस प्रकार से बोल रहे हैं वे शब्द बोलने का लहजा अलग-अलग प्रकार का होता है।

एक 'अ' कार शब्द को हजारों-लाखों प्रकार से बोला जा सकता है। किसका स्वराघात कहाँ जा रहा है। 'अ' शब्द भी है अक्षर भी, ये

पुद्गल है इस पुद्गल में स्पर्श भी है, रस, गंध वर्ण भी है अब आपसे पूछें इसका रस कैसा है? गंध-वर्ण कैसा है ? आप नहीं बता पायेंगे तो हमारा ज्ञान बहुत थोड़ा है, हम अल्पज्ञान में ही अहंकार से भर जाते हैं। हमें तो अकार का भी ज्ञान नहीं है। 'अ' को अलग-अलग प्रकार से बोलने में ही कितना अंतर आ गया यह हमारी पकड़ में नहीं आ सकता। जब पुद्गल की बात हमारी समझ में नहीं आ रही, पुद्गल तो पुद्गल है इन्द्रियों से ग्रहण किया जाता है फिर जो अतीन्द्रिय चेतना है जो आत्म द्रव्य है वह इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण करने में कैसे आ सकता है। उस चेतना से उत्पन्न हुयी पर्याय विशेष, उस आत्मा से निष्पन्न हुआ वह आनंद, आत्म से उत्पन्न हुआ वह संगीत इसे कानों के द्वारा नहीं सुना जा सकता।

हम अनादि से इन कानों से सुनने के ही आदी बने हुये हैं किन्तु अब उन कानों को बंद करके उस आत्म संगीत को सुनना पड़ेगा। आत्मा को आत्मा में देखने के लिये आँख खोलना नहीं है बाहर की आँखों का बंद करना जरूरी है। यदि बाहर की आँखें खुली रहेंगी तो बाहर के दृश्य आते रहेंगे और मन चंचल होगा। आत्मा की गंध लेने के लिये बाहर की नासिका की आवश्यकता नहीं है क्योंकि बाहर की नासिका बाहर की गंध लेती है अंतरंग की गंध लेने के लिये इस नासिका का कोई प्रयोग नहीं। आत्मा का स्पर्श करने के लिये ये स्पर्शन इन्द्रिय समर्थ नहीं है आत्मा का स्पर्श तो केवल और केवल आत्मा ही कर सकती है उसके अलावा और कोई स्पर्श कर ही नहीं सकता।

महानुभाव ! हम देखें कैसा है आत्मा का संगीत ? क्या है वह संगीत ? आत्म संगीत कैसे निष्पन्न हो ? किसी नृत्यांगना से कहो कि अच्छा सा नृत्य करके दिखाओ, नृत्यांगना कहेगी मैं ऐसे नहीं नाच सकती। अरे! क्यों नहीं नाच सकती, उस दिन सभा में तो नृत्य किया

था आज मेरे कहने से नृत्य क्यों नहीं कर रही, मैं तुझे अच्छा इनाम दूँगा, वह फिर भी नहीं नाचती, क्यों? क्योंकि उसे वैसा माहौल चाहिये। एक रोने वाले व्यक्ति से कहो जैसे जब किसी की मृत्यु होती है तब जो तुम अंदर से रोते हो वैसे अभी रोकर दिखाओ, जब तुम्हें खुशी हो रही है उस क्षण के परिणाम सहित क्रिया करके दिखाओ, तो नहीं बना सकते।

ऐसे ही हर प्रकार के कार्य के लिये एक वातावरण होता है, जैसा वातावरण होता है उसी प्रकार का प्रभाव होता है, उसी प्रकार भाव होता है और उसी प्रकार के भाव में उसी प्रकार की अनुभूति होती है। प्रतिकूल वातावरण में अनुकूल अनुभूति कैसे लाओगे? नहीं ला सकते। अग्नि की समीपता आपको स्वयं ताप देगी और तुम चाहो अग्नि के किनारे खड़े रहकर नदी जैसी शीतलता की अनुभूति प्राप्त कर लें तो क्या कर पाओगे ? नदी किनारे शीतकाल में जो ठंडी लहर उठ रही है आप ठिठुर रहे हैं उस समय अग्नि के पास बैठने जैसी ऊष्णता की अनुभूति कैसे प्राप्त होगी।

ऐसे ही आत्मा में संगीत पैदा करना है किन्तु भोगों को भोगते हुये नहीं, जीव विराधना करते हुये नहीं, वासना के सुमेरु पर चढ़कर नहीं, राग द्वेष की कीचड़/दलदल में फँसकर के नहीं, पंचेन्द्रिय के शिकंजे में कस करके नहीं, पापों में लिप्त होकर नहीं, कषायों की अग्नि में जलते हुये नहीं, आत्मा में इन सबसे रहित होकर संगीत पैदा करना है। जब आत्मा शुद्ध सम्यक्त्व से युक्त हो जायेगी, जब आत्मा तत्त्व ज्ञान से संयुक्त हो जायेगी, जब आत्मा व्यवहार चारित्र के आगे निकल जायेगी, निश्चय स्वरूप आत्मा, आत्मा में लीन हो जायेगी उस समय निश्चय रत्नत्रय की एकता को प्राप्त करने पर, निश्चय निर्विकल्प ध्यान में, शुद्धोपयोग में जो आत्मा का संगीत निष्पन्न होगा, उसके जो स्वर निकलेंगे उसका आनंद ही अलौकिक होगा जो

शब्दातीत होगा, इन्द्रियातीत होगा उस आनंद को फिर तुम किसी को दिखा नहीं सकते।

अभी यदि आपको कोई उपलब्धि होती है उसे आप दूसरों को दिखाने की कोशिश करते हो, कहीं योग्यता प्राप्त कर ली तो उसके प्रमाण-पत्र दिखाते फिरते हो, ये सब बाहर की उपलब्धियाँ हैं जो बाहर के लोगों को दिखायी जा सकती हैं। और आप दिखाते इसलिये हो क्योंकि आपको बाहर की सुख शांति चाहिये। आपके कर्ण प्यासे चकोर की तरह प्रशंसा के दो शब्द सुनने के लिये तरसते रहते हैं उससे आपको आनंद आता है। किंतु इन सबसे जब परे हो जाओगे, राग से, द्वेष से, मोह से, कषाय से, क्षोभ से परे हो जाओगे, विषय कषाय की कीचड़ से निकल निर्मल हो जाओगे, पवित्र होकर ज्ञान-ध्यान-तप में लीन होंगे तब उस आत्मा का संगीत निष्पन्न होगा।

संगीत के लिये कम से कम तीन अंग बताये गीत-वाद्य-नृत्य। किन्तु आत्मा के संगीत के लिये भी तीन बात कह रहे हैं वह है 'ज्ञान ध्यान तपोरक्त:' अथवा सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यग्चारित्र। यह कब आता है कहाँ आता है, तो वैराग्य की भूमि पर ये तीन आसीन हो पाते हैं, वैराग्य की भूमि नहीं है तो संगीतकार क्या स्वर लहरी सुनायेंगे।

व्यवहार चारित्र में/व्यवहार मोक्षमार्ग में दौड़ते हुये मुनिराज भी आत्मा के संगीत को नहीं सुन पाते, वह भी व्यवहार के संगीत को सुनते हैं, वह भी भगवान के गुणों का चिंतवन करते हैं आत्मा के गुणों का अपने मूलगुणों का चिंतवन करते हैं या परोपकार की भावना भाते हैं किन्तु आत्मा के संगीत को नहीं सुन पाते।

महानुभाव ! आत्मा के संगीत को सुनने के लिये वह अवस्था बहुत आवश्यक है जहाँ से आत्मा का संगीत उत्पन्न हो सकता है।

बीज बोरा में रखा रखा अंकुरित नहीं होगा उसे मृदु मृतिका व सलिल का सहयोग मिल जायेगा, हवा मिलेगी तो वह अंकुरित होने लगेगा ऐसी ही हमारी आत्मा की स्थिति है। पहले तो वह वैराग्य की भूमि चाहिये जहाँ वे संगीतकार बैठ सकें, पुनः तीनों प्रकार के वाद्ययंत्र होने चाहिये पुनः वह माहौल तैयार होना चाहिये। जब पूरी भूमिका तैयार हो जाती है तो सभी उस संगीत में वैसे ही डूब जाते हैं जैसे कोई व्यक्ति समुद्र में डूबता जाता है उसे बाहर की दुनिया से कोई मतलब नहीं। ऐसे ही हम जब तक बाहर की दुनियाँ से ऊबेंगे नहीं अंदर की दुनिया में डूबेंगे नहीं तब तक आत्मा का संगीत निष्पन्न हो नहीं सकेगा।

संगीत निष्पन्न होना चाहिये, बाहर के संगीत के लिये उपयोग को केन्द्रित करना जरूरी है तभी वह संगीत ग्रहण किया जा सकता है अन्यथा नहीं, ऐसे ही आत्मा के संगीत को सुनने के लिये चित्त की एकाग्रता परमावश्यक है। जब तक निर्विकल्प ध्यान की दशा पैदा नहीं होगी, 'नयपक्षपातविहीनं' नयों के पक्षपात से आत्मा विहीन नहीं होगी तब तक आत्मा का संगीत नहीं सुना जा सकता।

जब तक नयों का पक्ष है चाहे वह निश्चय नय का हो या व्यवहार नय का तब तक आत्मा के संगीत को ग्रहण नहीं किया जा सकता। व्यवहार संगीत के समान ही मान लेते हैं आत्मा के संगीत के सात स्वर हैं। आपकी भाषा में ही चर्चा कर लेते हैं। आपके संगीत का पहला स्वर है 'स'-षडज, र-रैवत, ग-गांधार, म-मध्यम, प-पंचम, ध-धैवत, नि-निषध। ये सात शब्द आप मानते हैं अब आत्मा के लिये इन शब्दों का प्रयोग कैसे करें-पहला स्वर है।

'स'-साम्य भाव-आत्मा के संगीत से पहला स्वर निकलता है साम्य परिणाम अर्थात् पत्थर जैसे हो गये। इस बुद्धि ने जजमेंट देना छोड़ दिया। जब तक हमारे पास न्याय देने वाली बुद्धि है तब तक

साम्य भाव आ ही नहीं सकता। और किसी के बारे में न्याय दिया जाता है ये अच्छा है या बुरा, न्याय देने वाला व्यक्ति कितना ही निष्पक्ष हो जाये, जजमेण्ट ही अपने आप में राग-द्वेष का प्रतीक है। आप कहेंगे कैसे ? वह या तो अच्छाई का पक्ष लेगा या बुराई का किंतु जिसकी दृष्टि में अच्छाई-बुराई नाम की कोई चीज है ही नहीं पाषाण की मूर्तिवत् वह न किसी को अच्छा कहेगा न बुरा। अपने वीतरागी भगवान् मूर्तिवत् हैं, मुनिराज भी मोक्षमार्ग को दिखाते हैं शरीर से, किंतु कब जब वे मूर्तिवत् हो जाते हैं तब। वचनों से कुछ बोले बिना शरीर से ही जो साक्षात् मोक्षमार्ग दिखा रहे हैं। आचार्य पूज्यपाद स्वामी जी ने 'सर्वार्थसिद्धि जी' में लिखा कि वे 'मूर्तिइव' मूर्ति के समान हो गये, जब तक मूर्ति के समान नहीं होंगे तब तक अमूर्त को कैसे खोजोगे ! मूर्ति के समान होकर के आप साम्य भाव को प्राप्त हो सकते हो।

रागद्वेष की कीचड़ ऐसी है जो फूँक मारने से न उड़ेगी, यह कई वर्षों से चिपकी हुयी है इसे रगड़-रगड़ कर धोना पड़ेगा। आप सोचो फूँक मारकर भगवान की भक्ति कर उड़ जाये और मुझे आनंद आ जाये ऐसे नहीं। पहले उस राग-द्वेष की कीचड़ को साफ करो, जब साम्य भाव पैदा हो जायेगा तब आत्मा के संगीत को प्राप्त करने के लिये अन्य स्वर अपने आप आते चले जायेंगे। साम्य भाव का आशय होता है समतामय परिणाम। समतामय परिणाम से आशय ममत्व का सम्पूर्ण रूप से नाश हो जाना, सम्पूर्ण समता वहीं पर आती है। जब तक ममत्व भाव है किसी के भी प्रति, यहाँ तक कि सिद्धों के प्रति भी, अपनी आत्मा के प्रति भी तब तक साम्यभाव का संगीत सुनायी नहीं देगा। यदि निष्पन्न हो भी गया तो वैसा ही होगा जैसे टूटी वीणा से निकला उल्टा-सीधा स्वर। किन्तु जब पूरा ममत्व भाव नष्ट हो जायेगा साम्यभाव आयेगा वह एक अलौकिक संगीत होगा जिस संगीत को प्राप्त कर आत्मा पुनः संसार में नहीं आ सकती।

रे-ऋजुता-संसारी प्राणी की ऋजुगति सार्थक नहीं है सिद्ध जीव की नियम से ऋजुगति ही होती है। और जिसके अंतरंग में शाश्वत ऋजुता का भाव आ गया, वह जीव अब कभी भी वक्र गति को प्राप्त करेगा ही नहीं। ऋजुता के मायने सरलता और सरलता तब आती है (मेरी दृष्टि में) जब चारों कषायें शमित हो जाती हैं। जिसके अंदर में क्रोध विद्यमान है वह सरल सहज हो नहीं सकता। जिस व्यक्ति के जीवन में मान विद्यमान है या किसी वस्तु को प्राप्त करने की आकांक्षा है तो सरल सहज हो नहीं सकता। जो सरल-सहज हो गया है उसके जीवन में चारों कषायें टिक नहीं सकती। वह ऋजुता का स्वर साम्यभाव के उपरांत ही निष्पन्न होता है।

ग-गमक/ज्ञाता-हमारी आत्मा ज्ञान स्वरूपी, स्वभाव ज्ञानी है। ये सभी गुणों में प्रमुख गुण है इसी गुण के उत्पन्न होने के बाद अन्य गुणों का प्रादुर्भाव संभव है। ज्ञान के बिना तो सम्यक्त्व भी नहीं होता। सम्यक्त्व को प्राप्त करने के लिये भी पहले सामान्य ज्ञान की आवश्यकता है, सामान्यज्ञान से वस्तु जानी जाती है पुन: मानी जाती है। पहले किसी वस्तु को देखा तो पहले जाना हाँ यह अमुक वस्तु है तब माना। बिना जाने कोई मान नहीं सकता, बिना जाने माना तो वह तो व्यर्थ है। जैसे बिना आधार के रखी वस्तु, आकाश के पुष्प या खर विषाण जो है ही नहीं ऐसे ही बिना ज्ञान के श्रद्धान नहीं होता। 'गमक' जीव का स्वभाव है। निगोदिया जीव से लेकर सिद्धों तक यह पाया जाता है, जब तक ये ज्ञान शुद्ध नहीं होता तब तक वह 'ग' अक्षर वाला संगीत आत्मा को सुनायी नहीं देता। पूर्ण श्रुत ज्ञान कहलाता है 13वें गुणस्थान में। फिर ज्ञान में कोई कमी नहीं रहती। उस समय जो संगीत निकलता है परम साम्य भाव, परमऋजुता, परम गमक तब वह आत्मसंगीत निष्पन्न होता है।

'म' मंजन-किसका मंजन ? मंजन अर्थात् सफाई करना। सफाई मतलब गंदगी को दूर करना। गंदगी कहाँ है? गंदगी संसार में है

क्योंकि जो वस्तु जैसी है वैसी ही दिखे तो गंदगी नहीं है उस पर यदि और चीज आरोपित हो जायें तो गंदगी है। हमारी आत्मा का जो स्वभाव है वैसी ही दिखे तब तो गंदगी नहीं है। हमारी चेतना पर कुछ अचेतन द्रव्य आकर सवार हो गया तो गंदगी हो गयी। उस गंदगी का मंजन करना है। उस मंजन के लिये योगी पुरुषार्थ करता है। साधना के माध्यम से, ध्यान-तपस्या के माध्यम से चेतना पर लगी पाप कर्मों की परतों को उखाड़ कर फेंक देता है। ज्यों-ज्यों आत्मा चमकती जाती है उस चमक के साथ चैतन्यमय संगीत ही प्रकट होता है वह आत्म संगीत का एक अंग है।

'प' पवित्रता-पंचमगति को प्राप्त करने का कारण है पवित्रता। ये पवित्रता आत्मा का संगीत है। पवित्रता जब अंतरंग से आने लगती है तब आनंद अलग ही आता है जैसे गंदे वस्त्र पहनकर मन अच्छा नहीं रहता स्वच्छ वस्त्रों को धारण कर मन भी खुश हो उठता है। पवित्रता जब आती है तब नया आभास होता है। वह नव आभास चार प्रकार का होता है अनंत दर्शन-अनंतज्ञान-अनंत सुख-अनंतवीर्य।

'ध' धर्म्य-धर्म्य का अर्थ एक धर्म शब्द है, एक धर्मद्रव्य है, एक धर्माचरण है, एक धर्म ध्यान है। यहाँ लिया धर्म्य अर्थात् धारण करने के योग्य। आत्मा में धारण करने योग्य सिर्फ और सिर्फ आत्मा के गुण होते हैं। जो गुण आत्मा में प्रकट हो गये वे गुण अब भी आत्मा से अलग नहीं हो सकते। 'ध' कह रहा है धर्म्य को स्वीकार करो। कई आचार्यों ने व्याख्या की है 'धरति इति धर्मः' जो हमें सुख में ले जाकर धरता है वह धर्म्य है। अथवा व्युत्पत्ति अर्थ ऐसे भी किया 'धारयति' जिसे धारण किया जाता है सो धर्म्य है।

नि-निर्गूह अवस्था/निस्तब्धता/नैष्यकर्म-(निःकर्म)-ये अंतिम स्वर है निःकर्म। इस स्वर के बाद अब कोई स्वर इस आत्मा से निकलने वाला नहीं है। निःकर्म अवस्था होते ही आत्मा निकल

परमात्मा हो जाती है। इसके पहले तो आप सकल परमात्मा होते हैं। साम्यभाव, ऋजुता, गमकपना (केवली), मंजन अर्थात् चार घातिया कर्मों का नाश कर पवित्र केवली हो गये, भाव मोक्ष से युक्त हो गये पुनः धर्म्य गुणों को धारण कर लिया कुछ सयोग केवली अवस्था में और कुछ अयोग केवली सिद्धावस्था में धारण हो जायेगा किंतु जहाँ नैष्कर्मावस्था प्राप्त हो गयी उसके आगे दशा व दिशा नहीं। ये सात स्वर आत्मा के हैं। इन सात स्वरों को सुनो, नहीं सुन पाते हो तो इनका चिंतवन करो, भावना भाओ, सिद्ध दशा को प्राप्त करने के लिये।

जब आपके मन में इस संगीत को सुनने की भावना होगी तो मृग की तरह से दौड़ते-दौड़ते जंगल में जाओगे। जहाँ कोई बालक बंसी बजा रहा है वहीं वह मृग जाकर खड़ा हो जायेगा। ऐसे ही तुम्हें इन सात स्वर में से कहीं भी कोई स्वर सुनाई देगा तुम दौड़ते हुये जाओगे। कहाँ आपके परिणाम साम्य हो रहे हैं, ऋजुता आ रही है, आत्मा ज्ञान की अनुभूति कर रही है, कहाँ पर आप अपनी आत्मा का मंजन करने में समर्थ होते हैं, कहाँ आप पवित्रता को प्राप्त करते हैं, कहाँ पर आप धर्मध्यानादि को प्राप्त करते हैं और कहाँ आप निःकर्म या निर्मोहपने को प्राप्त होते हैं। ये अभ्यास जब अपने आप में करते चले जायेंगे तब निःसंदेह उस आत्मा के सत् स्वरूप को प्राप्त करने में समर्थ हो जायेंगे।

महानुभाव ! विगत दस दिनों से आप विभिन्न विषय सुन रहे हैं ये विषय मात्र सुनने के लिये नहीं है एकांत में बैठकर बुनने के लिये भी हैं। जो कुछ अच्छा लगता है वह चुनने के लिये भी है। सुनकर ऐसा नहीं कि सिर पकड़कर धुनने लग गये। पश्चाताप मत करो अच्छा-अच्छा चुनना है। अभी तक तो संसार का ताना-बाना बुना अब आत्मा के अस्तित्व गुणों व नास्तित्व गुणों का ताना-बाना बुनना है। आत्मा में दोनों प्रकार के गुण हैं अस्तित्व का ताना नास्तित्व का बाना।

तब नि:संदेह आप परमात्म दशा को प्राप्त करने में सहज ही समर्थ हो जायेंगे। परमार्थ दशा सहजता में निष्पन्न होगी, दौड़ने से नहीं मिलेगी। असंभव कुछ भी नहीं हम चिंतवन करें और सही रास्ते का अनुगमन करें। इन्हीं सद् भावनाओं के साथ अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देता हूँ।

।। श्री शांतिनाथ भगवान की जय ।।

पर-तत्ती-णिरवेक्खो दुट्ठ-वियप्पाण णासण-समत्थो
तच्च-विणिच्छय-हेदू सज्झाओ झाण सिद्धियरो।।४६१।।

– का.अ.

जो महापुरुष पर की निंदा नहीं करते, सांसारिक किसी वस्तु की वांछा नहीं करते और मन में उठने वाले खोटे विकल्पों को नष्ट करके शास्त्र पढ़ते हैं, उनके ही तत्त्व निश्चय का कारण स्वाध्याय तप होता है।